# पतिव्रता गान्धारी

( एक आदर्श पतिव्रता का चरित्र )

—.०—

लेखक

पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी

—.०—

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२९

तृतीय बार ]

# समर्पण

लेखक के परम श्रद्धास्पद स्वामी ऑनरेबिल राजा सर रामपाल-
सिंह साहब बहादुर के० सी० आई० ई० के हार्दिक
मित्र, अनेक अनुपम गुणों के आधार, रियासत
बसई डीह ( कसमंडा ) ज़िला सीतापुर के
सुप्रसिद्ध ताल्लुक़दार श्रीमान् राजा

**सूर्य्यबख़्शसिंहजी महोदय**

की

सेवा में,

कमला और गिरा दोनों ही जिनका आश्रय लेती हैं।
एकाश्रित होकर भी पर-हित बहुतों को सुख देती हैं ॥
जिनको मातृ-भूमि ही के सम हिन्दी भाषा प्यारी है।
उनके कर-कमलों में अर्पित श्रद्धायुत "गान्धारी" है ॥

कात्यायनीदत्त त्रिवेदी

# भूमिका

कर्तव्य-पथ में अग्रसर होने के लिए भारतीयों को आदर्श के अनुकरण की आवश्यकता स्वयं-सिद्ध है। भारतीय महिलाओं के लिए यह आवश्यकता उससे भी अधिक है। आदर्श का ज्ञान कराने के लिए साहित्य में जीवन-चरितों का बाहुल्य ही एक-मात्र साधन है; पर हमारा हिन्दी-साहित्य क़रीब क़रीब इस विषय में कोरा ही है। हर्ष की बात है कि अब प्रकाशकों का ध्यान इस ओर भी आकर्षित हुआ है। इंडियन प्रेस ने भी अभी अभी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जीवन-चरित हिन्दी में प्रकाशित करके बड़े उपकार का काम किया है। उन्नति के ये शुभ लक्षण हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका भी उसी ढँग की है और उसी उद्देश्य को लक्ष्य करके लिखी गई है। गान्धारी का चरित सचमुच ही स्त्रियों के लिए आदर्श है। पति के नेत्रहीन होने पर गान्धारी ने आँखें रहते भी दृष्टि-सुख के उपभोग की परवाह न की; उसने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। स्वार्थ-त्याग की हद कर दी और पतिभक्ति की हद कर दी। हमारी गृह-देवियों को गान्धारी के इस चरित से शिक्षा लेनी चाहिए। हृदय में स्वार्थ-त्याग के भावों का उत्थान ही उन्नति का परिचायक है। आवश्यकता है कि हमारी गृह-देवियों के हृदयों में स्वार्थ-त्याग का

अङ्कुर जमें और वह फूले-फले। हमारी गृह-देवियाँ ही भावी सन्तति की जननी हैं, यदि उनका हृदय स्वार्थ-हीन होगा तो निस्सन्देह उनके सुपूतों का हृदय भी स्वार्थ-त्याग की ओर झुकेगा; यदि वे अपने पति पर अविचल भक्ति का आदर्श अपने नेत्रों के सामने रक्खेंगी तो हमारी बहिनें भी निस्सन्देह उसी पथ की ओर क़दम बढ़ायेंगी।

मैं निस्संकोच भाव से कहूँगा कि चरित को मनोरञ्जक बनाने में लेखक को अच्छी सफलता हुई है। भाषा भी सरल और स्त्रियों की समझ मे आने के योग्य है। लेखन-शैली के विषय में मैं अधिक कहना नहीं चाहता, क्योंकि चाहे स्नेह से हो, चाहे कथानक की रोचकता के कारण हो, लेखक के लिखने का ढंग मुझे बहुत पसन्द है।

आशा है कि इसे हमारी गृह देवियाँ अपने काम की वस्तु समझ कर अपनायेंगी।

रहवाँ राज्य
( ज़िला रायबरेली )
वसन्त-पञ्चमी १९७३

(ठाकुर) जगन्नाथबख्शसिंह
ताल्लुक़दार

---

# वक्तव्य

जिसके पास श्रेष्ठ विचार नहीं उसे लेखनी उठाने का अधिकार नहीं", इस बात को लेखक जानता है। फिर भी प्रस्तुत पुस्तिका लिखकर उसने ऐसी ढिठाई क्यों की? इसी विषय में उसे कुछ कहना है, यही उसका वक्तव्य है।

पुस्तकें समाज में उन्नत विचार फैलाने के लक्ष्य से लिखी जाती हैं, समाज के सामने अच्छे अच्छे चित्र उपस्थित करने के उद्देश्य से उनकी रचना की जाती है। वही लक्ष्य और वही उद्देश्य सामने रखकर लेखक ने भी यह छोटी सी पुस्तक लिखी है। उद्देश्य की रक्षा वह कहाँ तक कर सका है?—यह उसे मालूम नहीं, पर पुस्तक लिखते समय लक्ष्य उसका उच्च रहा है, इसे कहने में भी उसे संकोच नहीं।

प्रस्तुत पुस्तिका शिरसा-वंद्य महाभारत के सहारे लिखी गई है। महाभारत का आदर्श कितना उच्च है, इसके कहने की आवश्यकता ही नहीं। महाभारत हिन्दू-समाज का जीवात्मा कहलाने योग्य है। महाभारत ही में पतिव्रता गान्धारी का भी जीवन है। वह जीवन भारतीय देवियों के लिए सर्वथा शिक्षा-प्रद है। भारतीय स्त्रिया उस जीवन से पातिव्रत्य, धर्मपरायणता, अतिथि-सेवा, क्षमा, सार्वजनीन प्रेम, धैर्य, शील, शान्ति और सुख इत्यादि के सम्बन्ध में बहुत कुछ सीख सकती हैं।

हिन्दू आदर्श को अक्षुण्ण रखकर हमारी महिलाएँ जिनसे आनन्द और उपदेश पा सकें, ऐसी पुस्तकें हिन्दी में बहुत कम हैं। लेखक ने प्रस्तुत पुस्तिका में पतिव्रता गान्धारी का सिलसिले-वार चरित्र इसी त्रुटि को, किसी न किसी परिमाण में, दूर करने की प्रेरणा से लिखा है। उसने वर्तमान हिन्दू-समाज और वर्तमान सभ्यता पर दृष्टि रखकर ही लेखनी चलाई है। पर यदि किसी सज्जन को, किसी स्थल पर, कोई बात विरुद्ध दिखाई दे तो वे उस पर अधिक ध्यान न दें। लेखक उनसे सविनय प्रार्थी है कि उसका इसमें कुछ वश नहीं; इसे एक मान्य ग्रन्थ का सहारा लेकर चलना था। अपनी कल्पना मिलाकर किसी प्राचीन आदर्श पर धब्बे डालना अथवा काट छाट करके सच्चे रूप को बिगाड़ देना (या अपने मन के अनुसार गढ़ देना) उसने उचित नहीं समझा। ऐसी कल्पना का सम्मिश्रण किस काम का जिससे मूल आदर्श में बट्टा लगे? फिर भी कहीं कहीं मूल आदर्श की रक्षा करते हुए कल्पना का जो समाश्रय लिया गया है उसे लेखक स्पष्टतया स्वीकार करता है।

जिस सभ्यता में तथा जिस समय गान्धारी का जन्म हुआ था उस समय समाज के नियम और ही कुछ थे; उस समय समाज में और ही सिद्धान्त प्रचलित थे। उनका भी दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की गई है। समाज के नियमों में सदा परिवर्तन होता रहता है, इसी से आज-कल समाज के नियम और ही कुछ

हैं। पर कुछ भी हो, प्राचीन आदर्शों से समुचित शिक्षा ग्रहण करना ही उन्नत पथ पर जाने के लिए यथेष्ट साधन है।

ईश्वर करे भारत में फिर वैसी ही पतिव्रता, धर्मपरायणा और सुशीला रमणियाँ पैदा हों जैसी पतिव्रता गान्धारी थी। पतिसेवा को ही मुख्य धर्म्म मानकर वे पति को सुखी करें और इस गृहस्थी के जीवन को सोने का संसार बनाये रहें।

जिनके लिए यह पुस्तक लिखी गई है उनका इससे कुछ न कुछ उपकार हो, यही आन्तरिक कामना है।

मैं अपने कृपाकारक मित्र, हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपनी अमूल्य सम्मतियों से मुझे कृतकृत्य किया है।

कुर्री सुदौली राज्य,<br>
ज़िला रायबरेली<br>
नाग-पञ्चमी संवत् १९७३

कात्यायनीदत्त त्रिवेदी

---

# सम्मति

हर्ष की बात है कि हिन्दी में स्त्रियोपयोगी एक अच्छी पुस्तक और प्रकाशित हो रही है। लेखक महाशय की कृपा से मुझे छपने के पहले ही उसे देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

भारतवर्ष का सती-धर्म्म संसार में प्रसिद्ध है। इस देश की स्त्रियों ने जिस उच्चता और दृढ़ता से अपने प्रेम-धर्म का पालन किया है वह श्रद्धा-जनक भी है और आश्चर्य एवं कौतूहल-जनक भी। पतिव्रता गान्धारी के चरित में यह बात और भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

गान्धारी के पति महाराज धृतराष्ट्र अन्धे थे। इसलिए उसने भी नेत्र रहते अन्ध-भाव से अपना जीवन बिता दिया। वह अपनी आँखों पर बराबर पट्टी बांधे रही। पति-देव जिस सुख से वञ्चित रहे वह मेरे लिए त्याज्य है। उसके साधन रहें, पर मेरे किस काम के। त्याग की हद हो गई। इससे बड़ा और कौन सा आदर्श हो सकता है?

ऐसी प्रातः-स्मरणीया देवी का चरितरूपी पवित्र रत्न जिन्होंने महाभारतरूपी समुद्र से उद्धृत किया है वे सचमुच प्रशंसा के पात्र हैं। आशा है, हमारी गृह-देवियाँ इसे हृदय में धारण करके उसकी शोभा बढ़ावेंगी।

पुस्तक की भाषा सरल और लिखने का ढँग मनोरञ्जक है। बीच बीच में टीका-टिप्पणी के तौर पर लेखक ने जो अपने विचार प्रकट किये हैं उनसे अनेक स्थलों में पुस्तक की और भी शोभा बढ़ गई है।

कार्तिक १९७३ ] मैथिलीशरण गुप्त

---

# पतिव्रता गान्धारी

## पहला परिच्छेद

भारतवर्ष सचमुच ही प्रकृति देवी का लीला-निकेतन है। यहाँ पर प्रकृति ने बड़ी बड़ी लीलाएँ रची हैं। इसी भूमि पर और इसी देश में बड़े बड़े महापुरुषों ने जन्म लिया, तपस्वियों ने तपस्साधन किया, और कर्म्मवीरों ने अपनी कर्म्म-वीरता का परिचय दिया है। इसी भूमि पर पतिव्रताओं ने पति-सेवा को ही परमधर्म्म मानकर अक्षय्य यश प्राप्त किया है और इसी भूमि पर क्षत्रिय राजाओं ने प्रजापालन करके अपना नाम अमर किया है।

द्वापर युग के अन्त में जिस समय भारत के सच्चे सम्राट् भरत के वंश में, शान्तनु-पुत्र भीष्म की सहायता और उपदेश से, उनके सौतेले भाई महाराज विचित्र-वीर्य्य हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर बैठकर राजकाज चलाते थे उस समय राजा सुबल गान्धार राज्य के अधिपति थे। सिन्धु नदी के पश्चिम किनारे से जो भूमि-भाग क्रमशः उच्च होकर उत्तर पश्चिम की ओर सफ़ेद कोह तक फैला हुआ है यही उस समय गान्धार

राज्य के नाम से प्रसिद्ध था, और गान्धार ही का एक छोटा सा भाग आजकल भी कन्धार के नाम से मशहूर है।

राजा सुबल के राज्य-काल में गान्धार की विचित्र शोभा थी। वहा, अनाज के खेतो और अमृतोपम सुस्वादु फलों से परिपूर्ण बागों को देखकर यही ज्ञात होता था कि मानो लक्ष्मीजी ने इसी भूमि-भाग को अपना विहार-स्थल बनाया है जाड़े का आरम्भ होते ही वहा के पहाड़ों की चोटियाँ सफ़ेद बरफ से ढक जातीं और एक प्रतिभाशाली कवि चाँदी के पर्वत से उनकी उपमा दे देता। वसन्त के आते ही इधर उधर की लताएँ रमणीयता का रूप धारण करतीं, कुञ्जों में अजीब छटा छा जाती और श्याम शोभा देखनेवालो के नयनों को स्निग्ध करने लगती। ग्रीष्म के आरम्भ होते ही समस्त प्रदेश फूले हुए अनारों के फूलों की लालिमा से रँग जाता और फिर उन्हीं वृक्षों की डालियां वर्षा मे अपनी गोद में धुले धुलाये फल लिये हुए बड़ी प्यारी लगतीं। क़न्धार का अनार सचमुच ही अमृत तुल्य होता है। भारत मे अब भी फल बेचनेवाले क़न्धार के नाम से ही देशी अनारों के दाम दूने कर लेते हैं। वर्षा बीतते ही, उसके बाद आनेवाली ऋतुओं में वहा के गृहस्थों के घर, बाग़ीचे और वन अंगूरों के गुच्छों से भरे रहते। किसी मीठी चीज़ की मिठाई की उपमा जिन द्राक्षा-फलों (अंगूरों) से दी जाती है वे गान्धार ही में पैदा होते हैं। अन्यथा आजकल के भारत के बाग़ीचों के अधिकांश द्राक्षा-फल तो साक्षात् खट्टेपन का अवतार ही होते हैं।

आजकल भारतीय शहरों के रहनेवालों को प्राकृतिक शोभा बहुत कम दिखाई पड़ती है। प्रकृति की छटा के दर्शन उन्हें देव-दर्शनों के समान दुर्लभ रहते हैं वे नित्य प्रति पत्थर के कोयले से चलनेवाले इञ्जनों की विकट गर्जना अवश्य सुनते हैं, पर पहाड़ों और जङ्गलों में रहनेवाले बाघ और सिंहों की गर्जना सुनना उन्हें स्वप्न में भी नसीब नहीं। वे ऊँचे ऊँचे मकानों और शोर-गुल से भरी हुई सड़कों पर लट्टू रहते हैं, पर ऊँची चोटीवाले पर्वतों और निर्जन शान्त, लम्बे चौड़े मैदानों के देखने के लिए कल्पना का सहारा भी नहीं ले पाते। यहाँ के शहराती जिस प्रकृति की छटा के देखने के लिए ललचाते रहते हैं वही प्रकृति की अच्छी छटा और अनुपम शोभा गान्धार-निवासियों के नेत्रों के सामने एक विचित्र रूप धारण किये हुए प्रतिक्षण नाचा करती थी। अहा! गान्धार प्रदेश के जन-हीन बड़े बड़े मैदानों, चारों ओर फैले हुए वनों, आसमान से बातें करनेवाली पर्वतों की चोटियों और कोकिल-कूजित जङ्गलों के कारण हम उस प्रदेश को क्या कहें? उसे स्वप्न-रचना कहें या स्वर्गभूमि? प्रकृति देवी का क्रीड़ा-स्थल कहें या पवित्रता का शयन-मन्दिर?

राज्य-निवासियों के सुख के लिए, योग्य और नीति-कुशल मन्त्रियों की सलाह से, राजा सुबल ने सब भाँति की सुव्यवस्थाएँ कर दी थीं जैसे सूर्य-देव पृथ्वी पर इधर उधर फैले हुए जल को अपनी किरणों से खींचकर फिर यथासमय वृष्टि-

द्वारा वही जल उसके उपभोग के लिए दे देते हैं, इसी भाँति राजा सुबल के मन्त्री भी प्रजा से लगान अथवा कर लेकर उन्हीं के लाभदायक कार्य्यों में लगा देते थे। अधिक क्या कहा जाय, गान्धार राज्य की प्रजा सुख से अपने दिन बिताती हुई अपने शासक की मङ्गल-कामना के लिए परमात्मा से प्रार्थना करती और राज्य में घर घर आनन्द की बधाइयाँ बजती थीं। वहा के निवासी उन दिनों सन्तोष की प्रतिमूर्ति हो रहे थे। उनकी स्त्रियों की मधुर कण्ठध्वनि और सरल हँसी से दिशाएँ गूँज उठतीं और वे रमणियाँ स्वाधीनता की पवित्र मूर्त्तियाँ ज्ञात होती थीं। वे सोने-चाँदी के गहनों के लिए अपने पतियों से स्वप्न में भी रूठना न जानतीं और केवल फूलों के गहने पहनकर भी इसी पृथ्वीतल पर देवलोक की स्त्रियों का सा आनन्द प्राप्त करती थीं; अपने पतियों और बड़े जनों की सेवा करके, अपनी सास, ननद और अन्य बहिनों का आदर करके, अपने पुत्र-पुत्रियों, और पतोहुओं से प्रीति करके वे जञ्जालमयी गृहस्थी को भी सोने का संसार बनाये रहती थीं। वे इस बात को प्रत्यक्ष कर दिखाती थीं कि स्त्रियाँ चाहें तो अपने शील से इस संसार को ही स्वर्ग बना सकती हैं। और अधिक क्या कहें, उस समय राज्य का राज्य सुख के गीत गा रहा था और सब कहीं शान्ति की बधाई बजती थी।

---

## दूसरा परिच्छेद

यथा-समय राजा सुबल की पटरानी के गर्भ से एक राजकुमार और एक राजकुमारी ने जन्म ग्रहण किया। राजकुमार का नाम था शकुनि और राजकुमारी का नाम गान्धारी। गान्धार राज्य की राजपुत्री का नाम गान्धारी होना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं, पर वहाँ के राजकुमार का नाम शकुनि होना आश्चर्य-रहित भी नहीं। शायद आकृति और प्रकृति में शकुनि* पक्षी के साथ राजकुमार की सदृशता होने के कारण ही लोग उन्हें शकुनि कहते हों। जो हो, राजकुमार की प्रकृति सचमुच ही शकुनि पक्षी की प्रकृति से मिलती-जुलती थी। महाभारत के इतिहास में उनकी प्रकृति का परिचय कई जगह पाया जाता है। शकुनि ही की तरह उनकी दृष्टि बड़ी तेज़ थी और जिस तरह शकुनि पक्षी तमाम सांसारिक वस्तुओं पर लात मारकर केवल मुर्दे ही पर प्रीति करता है उसी तरह राजकुमार शकुनि भी तमाम सांसारिक कार्य्यों को छोड़कर केवल लोगों का अनिष्ट करने ही में सुख मानते थे। लड़कपन ही से उनकी कूट बुद्धि अपना रङ्ग जमाने लगी, उन पर अच्छे अच्छे योग्य शिक्षकों की शिक्षा का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

---

* गृद्ध पक्षी।

सच है, स्वभाव भी मनुष्यों के साथ माता के गर्भ से ही उत्पन्न होता है और मरने के समय तक साथ ही रहता है। वे साथ के खेलनेवाले सखाओं को भी धोखा देकर पीड़ित करने लगे और धीरे धीरे उनकी इस बुद्धि की वृद्धि ही होती गई। राज कर्म्मचारियों ने भी समझ लिया कि राजकुमार से किसी का भला न होगा। कुछ स्पष्ट-भाषी मन्त्रियों ने तो राजा सुबल से राजकुमार के चरित्र-सुधार के लिए यत्न करने की प्रार्थना की; पर कुछ ख़ुशामदी लोगों ने राजकुमार को प्रसन्न रखने के लिए यही कहा कि राजपुत्र की जैसी तीव्र बुद्धि है उससे यही आशा की जाती है कि वे थोड़े ही दिनों में एक असाधारण राजनीतिज्ञ होंगे।

ख़ुशामदी लोग समझते थे कि वे राजकुमार की प्रशंसा करके कुछ लाभ उठा सकेंगे पर कूट-बुद्धि शकुनि पर उनका क्या असर हो सकता था। वह उन ख़ुशामदियों को भी मौक़े मौक़े पर नीचा दिखाकर प्रत्यक्ष कर देता था कि कौड़ियों के मोल आत्मिक बल को बेचनेवाले लोगों के कार्य्यों का यही प्रतिफल है।

अपने शुभाकांक्षी मित्रों की अनुमति से राजा ने शकुनि के चरित्र-सुधार की बड़ी चेष्टा की, पर बेकार! जिस भाँति प्रबल धारा से बहती हुई नदी के वेग को नौकाओं की क़तारों से बँधे हुए पुल नहीं रोक सकते, अथवा जिस भाँति नाड़ी-व्रण (नासूर) के रुधिर-स्राव को दवाएँ नहीं रोक सकतीं उसी भाँति

राजकुमार शकुनि के सहज स्वभाव के वेग को राजा सुबल और उनके मन्त्रियों की चेष्टाएँ किसी भाँति भी न रोक सकीं।

फल यही हुआ कि राजकुमार शकुनि की कूट बुद्धि से लोग उकता गये और मन ही मन उनके उत्पातों से भयभीत होने लगे।

पढ़ने-लिखने में राजकुमार शकुनि की बुद्धि बड़ी तीव्र थी, इससे थोड़े ही दिनों में उन्होंने उचित शिक्षा प्राप्त कर ली। धनुर्विद्या और शस्त्र-शिक्षा में भी उन्होंने बड़ी योग्यता बढ़ाई और बड़े बड़े धनुर्द्धरों और युद्ध-कुशल योद्धाओं के छक्के छुड़ा दिये। उस समय राजपुत्रों को और शिक्षाओं के साथ साथ कुछ कुछ जुआ खेलना भी सिखलाया जाता था*। शकुनि की रुचि उस ओर बहुत अधिक थी। उन्होंने जुआ खेलने का यहाँ तक अभ्यास किया कि वे पक्के जुआरी ही नहीं बल्कि जुआ-रियों के उस्ताद बन गये। उन्होंने स्वयं जुआ खेलने के पाँसे बनाये और उनके फेंकने में इतने अध्यवसाय से अभ्यास किया कि जैसे वे चाहते वैसे ही पाँसे फेंक सकते। दूर दूर देशों के प्रसिद्ध प्रसिद्ध जुआरिओं को बुलाकर उन्होंने उनके साथ जुआ खेला। उन जुआरिओं ने भी जुए में राजकुमार की

* दुर्भाग्य ही से ऐसी प्रथा प्रचलित हुई समझिए। आज-कल भी हम लोग दिवाली पर यह कहकर कि हानि से हमारा हृदय जिसमें विचलित न हो इस खेल को चलाये जाते हैं। पर इसी की कृपा से नल की जो दुर्दशा हुई वह प्रकट है। और क्यों, महाभारत के सर्व-नाश का मूल भी हम इसी को कह सकते हैं। आज-कल भी इस दोष के कारण लोगों को आत्महत्या तक करनी पड़ती है।

प्रधानता स्वीकार कर ली और उनसे खेल में हार मान ली; शकुनि ने उनका बड़ा सत्कार किया और उन्हें बहुत सा इनाम देकर बिदा किया। धीरे धीरे अन्य देशों में भी यह बात प्रसिद्ध हो गई कि गान्धार देश के राजकुमार जुआ खेलने में बेजोड़ खिलाड़ी हैं। क्यों न हो, मनुष्य में एक आध विशेषता तो होनी ही चाहिए।

जब शकुनि तरुण हुए और उनकी शिक्षा समाप्त हुई तब वे गान्धार राज्य के युवराज बनाये गये। विधिपूर्वक उनका तिलक किया गया और उसी दिन से वे राज्य के कार्य्यों को भी देखने लगे। मन्त्रियों को उनकी आज्ञा बिना कोई बड़ा काम करने का अधिकार न रहा, यहाँ तक कि उनके बूढ़े पिता राजा सुबल भी उनकी सम्मति के बिना कोई काम न कर सकते।

लोग कहते हैं कि सगे भाइयों अथवा भाई-बहिनों की आकृति-प्रकृति में कुछ न कुछ समानता अवश्य होती है। पर कहीं कहीं इसके बिल्कुल ही प्रतिकूल देखा जाता है। राजकुमार शकुनि और उनकी सहोदरा बहिन राजकुमारी गान्धारी की आकृति-प्रकृति भी बिलकुल विभिन्न थी। प्राचीन गान्धार की रमणियाँ अपने अनुपम रूप-लावण्य के लिए प्रसिद्ध थीं; किन्तु गान्धारी देवी की रूपच्छटा के सामने वे भी लजा जातीं। उसे देखकर यही जान पड़ता की मानो किसी देव-कन्या ने धरातल पर अवतार लिया है। बाहरी सुन्दरता की अपेक्षा उसकी मानसिक सुन्दरता और भी बढ़कर थी। वह अपने

गुरुजनों पर भक्ति रखती, देव-ब्राह्मणों को श्रद्धा की दृष्टि से देखती और आश्रितजनों पर दया करती थी। उसकी सुशीलता के कारण नगरवासी उसे आदर की दृष्टि से देखते और वह उनके स्नेह और प्रशंसा की पात्री थी। शील ही उसका परम भूषण था और इसी शील की बदौलत वह सबको परम प्रिय थी। राजकुमार शकुनि के अत्याचारों से पीड़ित लोगों को भी वह ऐसे मधुर शब्दों में सान्त्वना देती कि वे अपना दुःख भूल जाते और उनके हृदय से निकली हुई आहें गान्धार राज्य का अमङ्गल न करतीं।

जैसे शरद्‌ऋतु के आते ही हंसों की पंक्ति गङ्गाजी के किनारे पहुँच जाती है, और रात्रि होते ही पर्वतों पर वनोषधियाँ आत्म-प्रकाश से प्रकाशित हो जाती हैं, उसी भाँति जिस समय उसे शिक्षा दी जाने लगी उस समय अगले जन्म में पढ़ी हुई विद्याएँ उसका समाश्रय लेने लगीं और थोड़े ही दिनों में वह पढ़ने-लिखने में प्रवीण हो गई। उसकी बुद्धि स्फुरित हुई और उसकी प्रतिभा ने भी विकास पाया।

बचपन ही से उसकी प्रवृत्ति धर्म्म की ओर अधिक थी। युवावस्था प्राप्त होने पर वह प्रवृत्ति धीरे धीरे बढ़ने लगी। देवी-देवताओं पर उसका विश्वास अटल तो था ही, वह अपनी सखियों की सलाह से सबका कल्याण करनेवाले शङ्करजी की आराधना करने लगी। चन्दन, अक्षत, फूल और फूलों की मालाओं द्वारा भगवान् भवानीपति की पूजा करके उसने उन्हें

यहाँ तक सन्तुष्ट किया कि उसे एक सौ पुत्रों की माता होने का वर मिला। वह सदा ही देव-पूजा करती और अपने माता-पिता को देवताओं से भी बढ़कर पूज्य मानती; वह अपनी माता को इतना प्रसन्न रखती थी कि उसकी माता भी प्रसन्न होकर यहाँ कहती कि तू गान्धार राज्य की जीती-जागती लक्ष्मी है। वह अपने भाई की भी जी-जान से ख़ातिर करती और राजकुमार शकुनि भी उससे बड़ी प्रीति करते। सगे भाई-बहिनों में जैसा प्रेम होना चाहिए वैसा ही गान्धारी और राजकुमार शकुनि में था।

---

# तीसरा परिच्छेद

इधर हस्तिनापुर के सिंहासन पर महाराज विचित्रवीर्य्य, भीष्म की अनुमति से, बिना किसी बाधा के सात आठ बरस तक राज-काज चलाते रहे। इसके अनन्तर उन्हें राज-यक्ष्मा अर्थात् क्षयी का रोग हुआ। उसने युवावस्था में ही उनकी जान ले ली। उनकी माता सत्यवती को अपने पुत्र की इस अचानक-मृत्यु से बड़ा भारी शोक हुआ। शोक होने की बात ही थी। महाराज विचित्रवीर्य्य की दोनों रानियों को सन्तान का मुँह देखना नसीब न हुआ था। अम्बिका और अम्बालिका दोनों पुत्र-रहित थीं। इधर भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का कठोर प्रण करके यह भी प्रतिज्ञा की थी कि मैं राज्यसिंहासन पर कभी न बैठूँगा। कुरुवंश के शिरोमणि महात्मा शान्तनु के सिंहासन का अब कोई अधिकारी हो न रह गया; शान्तनु के सत्यवती के गर्भ से चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य्य नामक उत्पन्न हुए पुत्रों ने तो परलोक का रास्ता लिया, और गङ्गा-सुत भीष्म राज-दण्ड ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा में बँध गये। अब उत्तराधिकारी के बिना राज्य की रक्षा कैसे हो? यह सोचकर सब लोग बड़े असमञ्जस में पड़े।

सत्यवती ने देश-काल की गति देखकर भीष्म से कहा कि पुत्र! तुम्हारे भाई चित्राङ्गद तो पहले ही परलोक-वासी हो गये

थे, अब विचित्रवीर्य भी न रहे, पर उनकी दो रानियाँ सन्तान-हीन घर में बैठो हैं, वे सन्तान का मुँह देखने की बड़ी अभि-लाषा करती हैं। मैं तुम्हें अनुमति देती हूँ कि अब तुम्हीं राज्य-सिंहासन ग्रहण करो और मेरी बहुओं द्वारा राज्य के उत्तराधि-कारी उत्पन्न करो। तुम्हारा यह काम अधर्म्म न कहा जायगा, यह बात धर्म्म-सम्मत है और समाज के भी अनुकूल है।

जिस समय की यह बात है उस समय समाज के नियम कुछ और ही थे। पर ज्यों ज्यों समय बीतता है, समाज के नियम भी आवश्यकता के अनुसार बदलते रहते हैं। आज-कल समाज के नियम कुछ और ही हैं। कुछ भी हो, उन दिनों क्षत्रज सन्तान की उत्पत्ति धर्म्म-गर्हित न थी।

परन्तु भीष्म ने कहा—माता! क्या तुम मेरी परीक्षा लेती हो, या मुझे क्षत्रिय ही नहीं समझतीं? मैं मानता हूँ कि तुम्हारी यह बात धर्म्म और समाज के अनुकूल है, पर क्या तुम मेरी प्रतिज्ञा को भूल गईं? क्या मैंने तुम्हारे सामने ही प्रण नहीं किया था कि मैं राज्य न ग्रहण करूँगा और आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा। संसार टल जाय पर मैं अपनी बात से टलने-वाला नहीं, मेरा क्षत्रिय धर्म्म न छुड़ाओ।

भीष्म की यह युक्ति-संगत बात सत्यवती को माननी पड़ी, पर कुरुवंश का सिंहासन खाली देखकर वंश-रक्षा-हेतु सन्तान के लिए स्वयं भीष्म भी बड़े व्याकुल और चिन्तित हुए। निदान सत्यवती ने यह दशा देखकर एक दिन फिर भीष्म से

कहा कि पुत्र ! तुम्हारे पिता से जिस समय मेरा विवाह नहीं हुआ था उस समय एक दिन मैंने महर्षि पराशर की बड़ी सेवा की थी। उसी सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे एक पुत्र दिया था। उस समय मेरे बदन से मछली की सी दुर्गन्धि आती थी, उसे भी दूर करके उसके बदले यह अत्यन्त मनोहर सुगन्धि भी उन्हीं ने दी थी। महर्षि का दिया हुआ वह पुत्र यमुना के टापू (द्वीप) में मुझसे उत्पन्न हुआ और इसी से उसका नाम द्वैपायन पड़ा। तुम्हारे इसी भाई महा-बुद्धिमान और महा-पण्डित महर्षि-पुत्र ने चारों वेदों के अलग अलग विभाग किये। इसी से उसका नाम वेदव्यास भी हुआ। उसने कहा था कि कोई बड़ा सङ्कट पड़ने पर, उससे उद्धार पाने के लिए, मुझे स्मरण करना। इससे इस समय जो यह विपत्ति हम पर पड़ी है उसे दूर करने के लिए यदि तुम सम्मति दो तो मैं तुम्हारे इसी भाई को स्मरण करूँ।

महामति भीष्म अपनी सौतेली माता की बात पर राज़ी हो गये। कुरुवंश के कल्याण के लिए उन्होंने माता को वेद-व्यास का स्मरण करने की अनुमति दे दी। सत्यवती ने वेद-व्यास का स्मरण किया। स्मरण करने पर वे माता के सामने हाज़िर हुए। माता के दुःख की बात सुनकर विचित्रवीर्य्य की स्त्रियों को उन्होंने पुत्र-दान देने का वचन दिया।

यथासमय अम्बिका के गर्भ से एक अन्धा पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम धृतराष्ट्र पड़ा। अम्बालिका के भी एक पुत्र हुआ

और उसका नाम पाण्डु पड़ा। अम्बिका की एक दासी ने भी प्रसन्नचित्त होकर वेदव्यास की सेवा की थी, सो उसके भी सब अङ्गों से परिपूर्ण एक पुत्र हुआ और उसका नाम पड़ा विदुर

कुरु के वंश में धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के जन्म लेने पर कुरुजाङ्गल, कुरुव और कुरुक्षेत्र आदि सूबों में सुख, ऐश्वर्य और धन-धान्य आदि की बहुत बढ़ती हुई।

जिस समय महात्मा भीष्म और सत्यवती की अनुमति से महात्मा द्वैपायन ने अपने औरस पुत्रों को प्रदान करना स्वीकृत किया था उसी समय यह बात तय हो चुकी थी कि जैसे पिता के सम्बन्ध से भीष्म विचित्रवीर्य्य के भाई हैं उसी तरह माता के सम्बन्ध से द्वैपायन भी विचित्रवीर्य्य के भाई हैं; अतः भीष्म उन पुत्रों के लालन-पालन और शिक्षण का भार लें। इसी कारण उनके रक्षणावेक्षण का भार भीष्म ही को अपने सिर लेना पड़ा।

महात्मा भीष्म अपनी बात के बड़े धनी थे। वे तीनों राजकुमारों को सगे भाई की तरह एक ही राजभवन में रखकर पुत्र की तरह पालने-पोसने लगे। समय पर उन्होंने उनके जात-कर्म्म इत्यादि संस्कार किये। उपयुक्त शिक्षकों के द्वारा उन्हें धर्म्म-शास्त्र इत्यादि की शिक्षा दिलवाई और परिश्रम तथा व्यायाम करना सिखलाया। जब वे युवा हुए तब उन्हें धनुर्वेद, गदा-युद्ध, ढाल-तलवार के काम और नीति-शास्त्र आदि में प्रवीण कराया। धनुर्विद्या में पाण्डु सबसे श्रेष्ठ हुए और बल

में धृतराष्ट्र सबसे बढ़कर निकले। धार्म्मिक बातों की जानकारी में विदुर का कोई मुकाबिला करनेवाला न रहा। इस तरह नष्ट होते हुए कुरुवंश का पुनरुद्धार होने से सब जगह सत्य का आदर और गौरव की वृद्धि होने लगी। उस समय वीर-प्रसविनी रमणियों में काशिराज की पुत्रियाँ, देशों में कुरुजाङ्गल, और धार्म्मिकों में विदुर, के सर्वश्रेष्ठ होने के कारण नगरों में हस्तिनापुर सबसे श्रेष्ठ हो उठा।

धृतराष्ट्र सबसे जेठे थे। उनकी बुद्धि अलौकिक थी, कई हाथियों का सा उनमें पराक्रम था। वे विद्वान् थे, शास्त्रों का मर्म जानते थे और ऐश्वर्य्य-युक्त थे। फिर भी अन्धे होने के कारण वे राज्यसिंहासन के अधिकारी न बनाये गये। विदुर राजनीति जानते थे, सर्वाङ्ग-सम्पन्न थे, और अद्वितीय विद्वान् थे। धर्म्म का गूढ़ से भी गूढ़ रहस्य उनसे छिपा न था, किन्तु दासी-पुत्र होने के कारण उन्हें भी राज्यसिंहासन न मिला। इससे युवावस्था प्राप्त होने पर पाण्डु ही हस्तिनापुर के सिंहासन के अधिकारी हुए। सूर्य्य के समान चमकती हुई उनके शरीर की प्रभा थी, सिंह के समान उनका प्रताप था, कपाट-तुल्य उनकी चौड़ी छाती थी, कमल के समान उनके नेत्र थे और सचमुच ही वे अद्वितीय विद्वान् और असाधारण राजनीतिज्ञ होकर कुरु-राज्य के योग्य उत्तराधिकारी थे।

# चौथा परिच्छेद

विदुर बड़े नीतिज्ञ थे। भीष्म की उनसे बहुत बनती थी। छोटे बड़े सभी मामलों में भीष्म विदुर से सलाह लेते थे। एक दिन बैठे बैठे उन्होंने विदुर से कहा—वत्स! हमारे वंश में बड़े बड़े प्रतापी राजा हुए हैं, उन्होंने बड़े बड़े पुण्य-कार्य्य किये हैं, इसी से और राजकुलों की अपेक्षा यह वंश अधिक यशवाला और प्रसिद्ध है। भाई विचित्रवीर्य्य के मरने पर यह कुल भी एक तरह से समाप्त ही हो चुका था पर महर्षि वेदव्यास की कृपा और माता सत्यवती के यत्न से बच गया। अब तुम लोग सयाने हुए। इससे वंशोत्पत्ति के लिए योग्य योग्य कन्याओं से तुम सबका विवाह कर देना हम अपना परम धर्म्म समझते हैं। हमने सुना है कि गान्धारराज सुबल की कन्या गान्धारी बड़ी सुशीला है। उसने महादेवजी को सन्तुष्ट करके सौ पुत्रों की माता होने का वरदान भी पाया है; और मद्रदेश के राजा की कन्या भी बड़ी सुलक्षणा है, इन दोनों कन्याओं का सम्बन्ध धृतराष्ट्र और पाण्डु से हो जाता तो बहुत अच्छा था। बताओ, इस सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है?

विदुर ने कहा—आप हमारे बड़े और पिता के बराबर हैं, जिस बात में आप हम सबका कल्याण देखें उसे सहर्ष करें, इसमें हमसे पूछने की कौनसी बात है ?

धृतराष्ट्र सब भाइयों में बड़े थे, इसी से पहले उन्हीं का विवाह होना उचित था। यही सोच समझकर भीष्म ने गान्धारराज सुबल के पास अपने दूत भेजे और अपने भतीजे धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी के विवाह का प्रस्ताव किया।

इधर राजकुमारी गान्धारी भी विवाह-योग्य हो गई थी। राजा सुबल उसके लिए उपयुक्त वर की तलाश में थे। राजकुमारी के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनकर अनेक देशों के राजाओं ने उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की और उन्होंने गान्धार को अपने अपने दूत भेजे। एक तो शील-सम्पन्ना, सुलक्षणा राजकुमारी दूसरे उससे अनेक पुत्रों की उत्पत्ति की बात; सोने में सुगन्धि थी। इसी से बहुत से राजकुमार उसके साथ विवाह के प्रार्थी थे, पर राजा सुबल यह निर्णय न कर सके कि उन सबमें, गान्धारी के योग्य, सर्वश्रेष्ठ कौन था।

इसी तरह कुछ दिन बीतने पर एक दिन ख़बर मिली कि कुरु-कुल-प्रधान भीष्म ने भी हस्तिनापुर से दूत भेजे हैं और वे गान्धारी के विवाह का प्रस्ताव लेकर आये हैं। भीष्म ने गान्धारराज के लिए उपहार भी बहुत कुछ भेजा था। मोतियों के हार, सुनहरी कलाबत्तू के कपड़े और राजोचित उपहार

की अन्य वस्तुएँ राजा सुबल के सामने रखकर हस्तिनापुर के प्रधान दूत ने कहा—महाराज! हम लोग कुरु-कुल-पुङ्गव भीष्म के आदेश से आपकी सेवा में हाज़िर हुए हैं। महाराज भीष्म ने आपको प्रणाम कहा है और आपका कुशल-वृत्त पूछा है। उन्होंने सुना है कि आपके यहाँ विवाह-योग्य एक कन्या है। अपने भतीजे राजकुमार धृतराष्ट्र के लिए वही कन्या आपसे उन्होंने माँगी है। उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि दोनों राजवंशों में पहले ही से प्रीति चली आती है; यह सम्बन्ध हो जाने से वह और भी दृढ़ हो जायगी। अब जैसी आपकी मरज़ी हो।

राजा ने राजोचित शब्दों में कहा—दूत! तुम्हारा कहना ठीक है, महामति भीष्म का सन्देश सुनकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। कुरुवंश के साथ सम्बन्ध होना वास्तव में बहुत अच्छा है; पर जब तक इस मामले में अच्छी तरह विचार न कर लिया जाय तब तक उत्तर कैसे दिया जा सकता है? आज तुम भी थके हुए आ रहे हो—विश्राम करो, हम सलाह करके कल तुम्हारे प्रस्ताव का यथोचित उत्तर देंगे।

दूत ने प्रणाम किया और अपने साथियों के साथ विश्राम-स्थान में जाने के लिए बिदा ली।

इधर राजा ने सामने ही बैठे हुए अपने बूढ़े मन्त्री पर नज़र डाली और कहा—मन्त्रिवर! इस मामले में आपकी क्या सलाह है?

मन्त्री ने कहा—महाराज ! इस मामले में अपनी कोई राय देना मुझे उचित नहीं मालूम होता; महाराज इस पर स्वयं विचार करें; महारानी और युवराज के साथ सलाह करके जो कुछ कर्तव्य हो आप ही ठीक करें।

उस समय राजकुमार शकुनि भी वहाँ मौजूद थे। अन्तः-पुर में महारानी से सलाह करनेवाली बात उन्हें बिलकुल अच्छी न लगी। मन्त्री की यह बात उन्हें ठीक न जँची। उन्होंने उसी वक्त कहा—जिस विषय से राजनीति का सम्बन्ध हो, और जिस पर राज्य की भलाई-बुराई अवलम्बित हो, उसकी आलोचना अन्तःपुर में करना ठीक नहीं। यहीं पर—मन्त्रणा-भवन ही में—उसकी मीमांसा की जाय।

मन्त्री ने पूछा—युवराज ! इसके साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है ? यह मेरी समझ में नहीं आया।

राजकुमार शकुनि इस पर बहुत बिगड़े। उन्होंने मीठी चुटकी लेते हुए कहा—मन्त्रिवर! अगर ऐसी बातें आपकी समझ में आ सकतीं तो आज गान्धार राज्य की और ही अवस्था होती।

मन्त्री ने कहा—युवराज ! हम बूढ़े हुए, बुढ़ापे के कारण हमारी इन्द्रियाँ अब शिथिल हो गईं, इससे हमारी भूल क्षमा कीजिए। राजकुमारी के विवाह के साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है, आप ही बतलाइए।

अब राजा की स्वीकृति लिये बिना ही, एक तरह से, विवाह की आलोचना मन्त्रणा-भवन ही में होने लगी।

युवराज, मन्त्री और राजा, तीनों मौजूद थे। उनमें इस तरह बातें होने लगीं—

शकुनि—मन्त्री महोदय ! यह बात तो हम पीछे कहेंगे कि इस विवाह के साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है पर पहले आप अपना अभिप्राय तो कहिए।

राजा—हाँ मन्त्रिन् ! आप कुण्ठित न हों। आपका जहाँ तक ज़ोर चला है आपने सदा ही हमारे हित के काम किये हैं, इस सम्बन्ध में आपके मन में जो बात हो उसे निर्भय होकर कहिए।

मन्त्री—महाराज ! हम क्या कहें ? कुरुवंश के साथ सम्बन्ध होना तो अच्छा ही है, पर राजकुमार धृतराष्ट्र तो जन्म से अन्धे हैं। उनके साथ लक्ष्मी के समान गुणोंवाली कन्या का विवाह करना उचित है या अनुचित, यह आप हो विचारें।

राजा—धृतराष्ट्र, जन्मान्ध हैं !

मन्त्री—हाँ महाराज ! जन्मान्ध !

राजा—तब यह विवाह क्योंकर हो सकता है ? शकुनि ! तुम क्या कहते हो ?

शकुनि—महाराज ! हमारा जो कुछ मत है वह हम पीछे निवेदन करेंगे, परन्तु उसके पहले ही हम मन्त्री महाशय से दो एक बातें पूछना चाहते हैं। अच्छा मन्त्री महाशय ! राजकुमार धृतराष्ट्र में बल कितना है ?

मन्त्री—बल तो उनमें इतना है कि कोई मत्त हाथी भी उनका मुक़ाबला नहीं कर सकता। हमने जहाँ तक सुना है, उनके बराबर बलशाली राजकुमार बहुत कम हैं।

शकुनि—उन्हें शास्त्र-ज्ञान कितना है?

मन्त्री—सुना जाता है, समस्त वेद-वेदाङ्ग उन्हें कण्ठस्थ हैं।

शकुनि—उनके वंश-गौरव के सम्बन्ध में भी आप कुछ जानते हैं?

मन्त्री—उस वंश के गौरव का परिचय देना निष्प्रयोजन है। ययाति, पुरु, दुष्यन्त आदिक राजर्षियों ने उसी वंश में जन्म ग्रहण किया है। उससे बढ़कर गौरव में और कौन राजकुल हो सकता है?

शकुनि—मन्त्रिवर! फिर इस विवाह में दोषवाली बात क्या है?

मन्त्री—दोष कुछ भी नहीं, युवराज! पर सबसे बड़ा और सब गुणों पर पानी फेरनेवाला दोष यही है कि राजकुमार धृतराष्ट्र जन्म के अन्धे हैं।

शकुनि—तब "ज्ञानी लोग शास्त्र-ज्ञान को ही चक्षु मानते हैं" क्या यह बात बिलकुल ही निस्सार है?

मन्त्री—युवराज! हमारी समझ में जो कुछ आया, हमने आपके और महाराज के सामने साफ़ साफ़ कह दिया; अब कर्तव्य के निर्णय करने का भार आप ही पर है।

राजा—हाय ! हाय ! इतने दिनों के बाद कुल, शील और बल में यदि एक सुपात्र जुटा तो वह भी विकृताङ्ग। शकुनि ! हम क्योंकर अपनी उस सोने की पुतली को अन्धे वर के हाथ में देंगे ?

शकुनि—महाराज ! राजधर्म्म बड़ा कठिन है, उसका पालन करने के लिए माया-ममता की अपेक्षा भविष्य के कल्याण के लिए चित्त की दृढ़ता ही की अधिक ज़रूरत है। मन्त्रीजी ने हमसे पूछा था कि इस विवाह के साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है ? उसे भी सुनिए। हमारे इस गान्धार राज्य पर बहुतों की नज़र है। एक ओर शक, दरद और बाह्लीक इत्यादि असभ्य जातियाँ इसकी उपजाऊ उपत्यका लूटने के प्रयास में हैं; और दूसरी ओर पञ्चनद (पञ्जाब)-निवासी राजगण मांस-लोलुप बिलाव की तरह इसकी ओर दृष्टि लगाये हुए हैं। ऐसी दशा में किसी शक्तिशाली राजवंश के साथ सम्बन्ध जोड़ लेना हमारा परम कर्तव्य है। ऐश्वर्य्य और पराक्रम में कुरु-कुल की बराबरी करनेवाला भारत में कोई दूसरा राजवंश नहीं; कुरुकुल के साथ सम्बन्ध हो जाने से आर्य्य और अनार्य्य कोई भी शत्रु हमारा अनिष्ट करने का साहस नहीं कर सकेगा। राजकुमारी को धृतराष्ट्र के साथ ब्याह देने से भुवनविजयी वीर भीष्म हमारी ओर हो जायँगे और ऐसा न करने से वे रुष्ट हो जायँगे। उनका नाराज़ हो जाना मामूली बात नहीं। महाराज ! राज्य के कल्याण के

लिए इस सम्बन्ध में आप अपनी सम्मति दे दें। यह आप पर छिपा नहीं है कि राजधर्म्म की रक्षा के लिए बड़े बड़े नृपतियों ने अपनी अपनी धर्म्मपत्नी तक को छोड़ दिया है।

राजा—शकुनि! तुम्हारा कहना ठीक है, पर राजरानी तो राज-धर्म्म जानती नहीं; वे क्या कहेंगी? और माता-पिता की प्यारी गान्धारी ही क्या सोचेगी?

शकुनि—महाराज! आपकी आज्ञा टालनेवाला कौन है? मेरी माता ने तो अपने जीवन भर में आपकी आज्ञा कभी नहीं टाली। और बहिन गान्धारी? वह तो देववाणी की अपेक्षा भी आपकी बात का अधिक आदर करती है।

राजा—यह ठीक है; फिर भी, देखो, क्या अन्धे वर के हाथ में गान्धारी ऐसी कन्या का देना उचित है?

शकुनि—महाराज! "अन्ध"! "अन्ध"—जिसे देखो वह यही कहता है। नेत्र ही तो मनुष्यों का एक बड़ा भारी शत्रु है; नेत्र ही तो रूप-लालसा उत्पन्न करता है। इसी रूप-लालसा ही में तो मुग्ध होकर बहुत से राजकुमार अपनी प्राणों से भी प्यारी पत्नी को छोड़कर दूसरा विवाह कर लेते हैं। धृतराष्ट्र के साथ विवाह होने से राजकुमारी को कोई सौत होने का भय जाता रहेगा, यह बात आप कोई भी नहीं सोचते। बहिन गान्धारी की प्रकृति हमें मालूम है; पति चाहे अन्धा हो या लूला, वह उसे देवता जानकर सेवा करेगी, और स्वयं सुखी रहकर स्वामी को भी प्रसन्न रक्खेगी।

राजा सुबल ने जब देखा कि शकुनि का इस विवाह पर बड़ा ही आग्रह है तब उन्होंने कहा—वत्स शकुनि ! देखते हैं कि तुम बड़े दूरदर्शी हो। परमेश्वर तुम्हें चिरञ्जीवी करें जब तुम कहते हो कि इस सम्बन्ध से राज्य का कल्याण होग और गान्धारी भी सुखी रहेगी तो हमें मञ्ज़ूर है। हम अन्तःपुर में जाकर राजरानी से अपना अभिप्राय कहते हैं। तुम मन्त्री महाशय के साथ सलाह करके उपहार के बदले में जो कुछ भेजना है उसका इन्तज़ाम करो, हम कल ही हस्तिनापुर को दूत भेजेंगे; यहाँ विवाह ठीक है।

यह कहकर राजा सुबल अन्तःपुर को चले गये।

---

# पाँचवाँ परिच्छेद

इधर राजकुमार शकुनि, राजा सुबल और उनके मन्त्री में विवाह के लिए सलाह हो ही रही थी और उधर अन्त:पुर में किसी ने खबर दे दी कि हस्तिनापुर के अन्धे राजकुमार धृतराष्ट्र के साथ राजकुमारी गान्धारी का विवाह ठीक हो गया। यह खबर सुनकर राजकुटुम्बिनी स्त्रियों में एक प्रकार का आन्दोलन होने लगा। किसी ने कहा, "राजा ने यह क्या किया? इस तरह सोने की मूरत को एक अन्धे के हाथ में क्यों दे दिया?" किसी ने कहा, "यह तो होना ही था। जब दूर दूर के बड़े बड़े घरों से विवाह का सन्देशा आया, और राजा-रानी किसी के मन में बात न बैठी, तो फिर और होता ही क्या?" किसी ने कहा—"कुछ भी हो, वंश बड़ा अच्छा है।" फिर किसी ने कहा कि "कुछ भी हो, हमें क्या मतलब? जिनकी लड़की है वे उसे अन्धे कुँए में फेंक दें तो हमारा क्या?"

धीरे धीरे यह बात वहाँ भी पहुँची जहाँ गान्धारी रहती थी। उसकी एक प्रिय सखी मुँह लटकाये हुए आई और उससे बोली—राजकुमारी! जब से मैंने एक बात सुनी है मेरे मन को बड़ा दुःख हो रहा है, वही तुमसे कहने आई हूँ।

गान्धारी—क्या हुआ सखी ? देखती हूँ तुम्हारा मुँह सूख गया है, कहो क्या सुन आई हो ?

सखी—सुन आई हूँ कि तुम्हारे विवाह की बातचीत पक्की हो गई है।

गान्धारी ने हँसकर कहा—अच्छा तो फिर इसमें तुम्हें दुःख काहे का ? क्या तुम्हारी यही इच्छा है कि तुम्हारे साथ रहने के लिए मैं जन्म भर कुँआरी ही रहूँ ?—कहाँ सम्बन्ध का ठीक ठाक हुआ है ?

सखी—हस्तिनापुर में, राजकुमार धृतराष्ट्र के साथ।

गान्धारी ने फिर मुसकराकर कहा—तुम्हारे साथ न होकर विवाह मेरे साथ होनेवाला है, जान पड़ता है, इसी से तुम दुखी हो ?

सखी ने कहा—राजकुमारी ! तुम्हें यह मालूम ही नहीं कि तुम्हारे भाग्य में क्या क्या दुःख लिखा है, इसी से तुम हँसी करती हो। मैंने सुना है, राजकुमार धृतराष्ट्र जन्म के अन्धे हैं।

सखी के मुँह से अपने पति के अन्ध होने की बात यदि कोई दूसरी स्त्री सुनती तो अवश्य ही उसका धीरज छूट जाता, पर राजकुमारी गान्धारी बड़ी शान्तबुद्धि की थी; वह घबड़ाई नहीं। यह बात अवश्य हुई कि थोड़ी देर के लिए मानो उसका सारा शरीर काँप उठा, फिर भी उसके मुँह पर बिन्दु-मात्र भी विकार नहीं देख पड़ा। उसने सखी से पूछा—

सखी ! क्या सम्बन्ध सचमुच ही पक्का हो गया है ? और यदि पक्का हो गया है तो किया किसने ?

सखी—स्वयं महाराज ही ने सम्बन्ध तय किया है ? सुनती हूँ कि कल हस्तिनापुर को दूत भजे जायँगे। महाराज तो पहले इस विवाह के लिए राज़ी नहीं थे; परन्तु युवराज ने उन्हें समझाया कि गान्धार राज्य के कल्याण के लिए यह सम्बन्ध हो जाना बहुत ज़रूरी है। चारों ओर से शत्रुओं से गान्धार की रक्षा करने के लिए किसी शक्तिशाली राजवंश के साथ सम्बन्ध करना आवश्यक है। इसी से अन्त में महाराज ने भी अनुमति दे दी। अब सब ठीक हो चुका है।

गान्धारी का हृदय बड़ा उदार था। उसने कहा—सखी ! यदि ऐसा ही है, तो इससे बढ़कर मेरा और क्या अत्यन्त हृदय-स्पर्शी सौभाग्य हो सकता है ? गान्धार के कल्याण के लिए—विवाह की कौन सी बात—यदि मेरे प्राण भी लग जायँ तो भी मुझे क्षोभ नहीं।

सखी—तुम्हें समझ नहीं पड़ता। आओ रानी-माँ के पास चलें; मैं उनसे कहूँगी कि तुम इस विवाह के लिए राज़ी नहीं। तुम्हारी मरज़ी न होने से रानी-माँ अपनी सम्मति कभी न देंगी। और ऐसा होने से महाराज को भी अपना मत बदल देना पड़ेगा। तुम इस समय लज्जा छोड़ो, अब भी समय है, आओ हम तुम दोनों रानी-माँ के पास चलें।

गान्धारी—सखी ! तुम कैसी बेसमझी की बातें कर रही हो ? पिता जिस समय मुझे किसी के हाथ में देने की इच्छा कर चुके, उसी समय मैंने समझ लिया कि मैं दे डाली गई इस समय मेरा पति चाहे अन्ध हो चाहे पङ्गु—इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं ! भक्त लोग देवमूर्त्ति की उतनी ही श्रद्धा करते हैं, चाहे वह मिट्टी की बनी हो अथवा पत्थर या किसी धातु की। जिस भाँति भक्त लोग सच्ची श्रद्धा से मूर्त्ति की पूजा करके मुक्ति प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार मैं भी अपने पति को परम देवता समझकर उनकी सेवा करूँगी और सुख पाऊँगी।

सखी—बहिन ! तुम धर्म्म-ज्ञान से चाहे जो कुछ कहो, पर क्या अन्धे पति के साथ तुम हृदय से प्रेम कर सकोगी ?

गान्धारी—न कर सकने का कारण ही कौन सा है ? क्यों न कर सकूँगी ? उनकी अङ्गहीनता मेरे मन में विकार न उत्पन्न करेगी, इसका मुझे दृढ़ विश्वास है।

सखी—इसका उपाय तुमने क्या सोचा है बहिन !

गान्धारी ने प्रसन्न होकर कहा—सखि ! जब तुम कह रही हो कि मेरे पिता यह सम्बन्ध स्वीकार कर चुके हैं तो हो चुका। आज से ही मैं हस्तिनापुर के राजकुमार की पत्नी हो चुकी। मैं आज ही से अपनी आँखों पर पट्टी बाँधती हूँ। मेरे पति चाहे सुरूप हों चाहें कुरूप, वे नेत्रवाले हों या नेत्र-रहित; जब वे मुझे देखे बिना ही पत्नी-रूप में ग्रहण कर सकते हैं, तो मैं भी उन्हें देखे बिना ही पति-रूप में ग्रहण क्यों न करूँ ?

यह कहकर गान्धारी ने कपड़ा मँगवाकर अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली।

राजकुमारी का यह अद्भुत और प्रशंसनीय उदार भाव देखकर सखी अवाक् रह गई। उसके मुँह से ये ही शब्द निकले कि 'धन्य! धन्य!' उसने कहा—सखी! मैं हारी। मैं साधारण मानवी हूँ और वैसी ही मेरी बातें हैं, तुम देवी हो और तुम्हारी बातें भी देवियों की सी हैं। तुमने इतने दिन महादेव और पार्वती की सेवा की है, तुम्हारा मिलन भी पार्वती और शङ्कर का सा मिलन हो।

पिता पर अविचल भक्ति रखनेवाली गान्धारी ने अपनी रूप-लालसा पर पानी डाल दिया। उसने उदारता की हद कर दी। इस प्रकार उसने दिखला दिया कि स्त्रियाँ क्योंकर सच्ची अर्द्धाङ्गिनी नारी बन सकती हैं और क्योंकर वे अपने पति को प्रसन्न करने का यत्न कर सकती हैं।

सच है, सच्चा पतिव्रत इसे ही कहते हैं। पति के नेत्रहीन होने के कारण ही गान्धारी ने दृष्टि रखते हुए भी दृष्टि के उपयोग करने की इच्छा न की, आँखें रहते भी पट्टी बाँधकर वह आँखों से रहित हो गई।

गान्धारी की सखी राजमाता के पास पहुँची। उसने वहाँ जाकर गान्धारी के कठिन प्रण और विवाह के सम्बन्ध में उसके विचार की चर्चा की।

राजा सुबल भी उस समय अन्त:पुर में रानी के पास ही थे। उन्होंने यह संवाद सुन दाँतों तले उँगली दाबी। एक राजा ही क्या? जिस किसी ने गान्धारी का यह कृत्य सुना, अवाक् रह गया। सभी ने गान्धारी के चरित्र, पितृभक्ति और पातिव्रत्य की भूरि भूरि प्रशंसा की।

इधर विवाह की स्वीकृति का सन्देश लेकर दूत हस्तिनापुर रवाना किये गये, उधर युवराज शकुनि अपनी बहिन के विवाह के दिन की बाट जोहने लगे। निदान वे पिता की आज्ञा से राजकुमारी गान्धारी को लेकर हस्तिनापुर आये।

आज-कल समाज में जो रीति प्रचलित है उसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और कतिपय इतर जातियों के यहाँ भी लड़के-वाले कन्यावालों के यहा बारात लेकर ब्याहने जाते हैं। पर हम जिस समय की चर्चा करते हैं उस समय रस्म-रिवाज इसके विपरीत था। उस समय विवाह करने के लिए कन्या वर के घर लाई जाती थी और वहीं उसका पाणि-ग्रहण होता था। समय की रीति के अनुसार युवराज शकुनि ने भी भीष्म की अनुमति से विधिपूर्वक गान्धारी का हाथ धृतराष्ट्र के हाथ में दिया। इस तरह गान्धारी का विवाह धृतराष्ट्र से हो गया।

सुशीला गान्धारी के अच्छे व्यवहार से कौरव प्रतिदिन अधिक अधिक प्रसन्न और सन्तुष्ट रहने लगे। उसने अपने गुरुजनों की सेवा में कभी कोर-कसर नहीं की। भीष्म

और विदुर को उसने अपने व्यवहारों से प्रसन्न कर लिया। उसने कभी किसी से द्वेष नहीं किया और उससे कभी कोई अप्रसन्न नहीं हुआ।

भीष्म ने राजकुमार शकुनि की बड़ी ख़ातिर की। उन्होंने गान्धार राज्य के युवराज को थोड़े दिनों हस्तिनापुर में प्रसन्नतापूर्वक रक्खा और फिर उनके इच्छानुसार उनका यथोचित सत्कार करके बिदा किया। शकुनि इस सम्बन्ध से पहले ही प्रसन्न थे, पर हस्तिनापुर में कुछ दिन रहकर वहाँ का विभव और भीष्मादिक का बर्ताव देखकर वे और भी पुलकित हुए।

---

## छठा परिच्छेद

राजकुमार धृतराष्ट्र का विवाह हो जाने के बाद महामति भीष्म को यह फ़िक्र हुई कि पाण्डु और विदुर का विवाह भी शीघ्र हो जाय। इसके लिए वे सुन्दरी और सुशीला राजकुमारियों की तलाश में रहने लगे। इसी अवसर पर महाराज कुन्तिभोज के यहा से कुन्ती के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण आया। भीष्म ने सहर्ष पाण्डु को स्वयंवर में जाने के लिए आज्ञा दे दी।

स्वयंवर के दिन कुन्ती के विवाह की इच्छा से हज़ारों राजा आये। महाराज पाण्डु भी पहुँचे। वे अपने सूर्य्य-सदृश तेज से सारे राजाओं के तेज को मलिन करने लगे। यथासमय कुन्ती स्वयंवर-सभा में पहुँची। उसके हाथ में फूलों की माला थी। लज्जा, उत्साह और भयजनित संकोच के कारण वह धीरे धीरे चलती हुई बड़ी सुन्दरी लगती थी। उसने सब राजाओं के बीच में बैठे हुए प्रतापी महाराज पाण्डु को भी देखा तथा लज्जा से अपना सिर झुकाकर अपने हाथ की माला उन्हीं के गले में डाल दी। फिर शुभ लग्न में पाण्डु के साथ कुन्ती का विवाह हो गया। कुन्ती का दूसरा नाम पृथा भी था।

महाराज पाण्डु का कुन्ती के साथ विवाह हो जाने के कुछ दिन पीछे भीष्म ने सोचा कि पाण्डु का एक और विवाह करना चाहिए। मद्रदेश के राजा शल्य की बहिन माद्री के गुणों की प्रशंसा वे बहुत दिनों से सुन रहे थे। मद्रनरेश का वंश भी सम्बन्ध करने के योग्य ही था। इसी से महामति भीष्म स्वयं मद्र देश को गये। जब राजा शल्य ने सुना कि कुरुकुल-प्रधान भीष्म आ रहे हैं तब आगे आकर उसने उनका स्वागत किया। भीष्म ने भी उसके बदले बड़ी शिष्टता दिखाई। हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र और आभूषण इत्यादि उपहारों-द्वारा उन्होंने महाराज शल्य को सन्तुष्ट किया और पाण्डु के साथ माद्री का विवाह करने की बातचीत की। शल्य इस सम्बन्ध के लिए राज़ी हो गये। महामति भीष्म माद्री को लेकर हस्तिनापुर लौट आये और शुभ लग्न में पाण्डु के साथ उसका विवाह कर दिया।

इसके कुछ समय पीछे राजा देवक की गुणवती कन्या पारशवी के साथ उन्होंने विदुर का भी विवाह कर दिया। यों तीन भतीजों के विवाह करके वे निश्चिन्त हो गये।

धृतराष्ट्र, विदुर और पाण्डु प्रेमपूर्वक रहने लगे। तीनों भाई भीष्म के बड़े आज्ञाकारी थे। उन्हें वे पिता ही के तुल्य मानते और पूजा करते। यह बात सच है कि पाण्डु ही सिंहासन के मालिक थे, पर फिर भी वे बिना धृतराष्ट्र और विदुर की सलाह के एक भी काम न करते। पाण्डु की इस नम्रता पर धृतराष्ट्र परम सन्तुष्ट थे।

कुछ दिनों के बाद भीष्म की आज्ञा से महाराज पाण्डु दिग्विजय का निकले और मगध, मिथिला, काशी आदि अनेक देशों के नृपतियों को अपने अधीन करके हस्तिनापुर लौट आये। भीष्म अपने भतीजे की इस विजय से बहुत प्रसन्न हुए।

पतिव्रता गान्धारी, कुन्ती और माद्री में भी बड़ा प्रेम था। वे एक दूसरी के साथ स्नेह से रहतीं और प्रत्येक कार्य्य में एक दूसरी की सहायता करती थीं। अच्छे अच्छे वंशों की कन्याएं तो वे पहले ही थीं, पर सद्वंश की वधुएँ होकर वे अच्छे व्यवहारोंवाली क्यों न होतीं? कुन्ती और माद्री को गान्धारी सदा ऐसी शिक्षा देती कि जिससे वे दोनों बहिन की तरह रहें और उनमें सवतिया-डाह न पैदा हो। वे दोनों भी गान्धारी के गुणों और उसके शील पर मुग्ध होकर उसकी बड़ी सेवा करतीं। कुन्ती राजरानी होकर भी स्वयं इस बात की देखभाल रखती कि गान्धारी को किसी बात का दुःख न होने पावे। वह प्रातःकाल उठकर गान्धारी के पास जाती और चरण छूकर प्रणाम करती। गान्धारी प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती कि "तुम्हारा सुहाग पूरा रहे, और जैसे तुम धर्म पर इतनी दृढ़ रहती हो, वैसे ही तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हुआ पुत्र भी कुरुकुल में धर्म का साक्षात् अवतार ही हो"। यह आशीर्वाद पाकर कुन्ती का हृदय आनन्द से उछल पड़ता। महामति विदुर की धर्मपत्नी पारशवी बड़े सीधे स्वभाव की थीं। न उनमें राजकन्याओं की सी तुनक-मिज़ाजी ही थी और न

विलासप्रियता। वे सदा सादे कपड़े पहनतीं और सादा भोजन पाकर सन्तुष्ट रहतीं। गुरुजनों की सेवा करना और घर पर आये हुए अतिथियों का सम्मान करना ही वे सच्चे तपस्साधन का एक अङ्ग मानतीं।

राजा पाण्डु को शिकार का बड़ा शौक़ था। इसी शिकार के शौक़ से एक समय वे अपनी रानियों समेत हिमालय पर्वत की दक्षिणवाली तराई में चले गये। वहां वे अपनी रानियों के साथ पर्वत की सैर करने और विशाल शालवृक्षोंवाले वन में शिकार का सुख लूटते। राज्य का प्रबन्ध भीष्म और विदुर की सलाह से सुचारु रूप से चला जाता। भीष्म को पाण्डु से बड़ा प्रेम था। वे उनके सुपास के लिए ठीक समय पर रसद का सामान भेज दिया करते।

एक बार शिकार खेलते खेलते पाण्डु वन में आगे की ओर बढ़ गये। वहां पर उन्होंने मृग के एक जोड़े पर तीर चला दिया। तीर लगते ही वह जोड़ा ज़मीन पर गिर गया। मृग के बाण इतने जोर से लगा था कि उसके प्राण निकलने लगा। मरने की पीड़ा से वह चिल्लाने लगा और आख़िरकार उसके प्राण-पखेरू शरीर-पिञ्जर से निकल ही गये।

इस दुर्घटना से महाराज पाण्डु को बड़ा दुःख हुआ। उन्हें मालूम होने लगा कि मानों उन्हें कोई शाप दे रहा है कि "जाओ! स्त्री के साथ सुख से विहार करनेवाले मृग पर बाण छोड़कर तुमने बड़ी निठुरता का काम किया है, इसका

प्रतिफल भी तुम्हें ज़रूर भोगना पड़ेगा। तुम्हारी भी मृत्यु ऐसे ही समय पर होगी।''

पाण्डु के मन पर इस दुःख और खेद का विलक्षण प्रभाव पड़ा। उन्हें सुख-भोग से विरक्ति हो गई और वे वन में कठिन तपश्चर्या करने लगे। रानियों को उन्होंने हस्तिनापुर लौटाना चाहा, पर वे लौटने को राज़ी न हुईं। उन्होंने पति के साथ रहने ही में सुख माना। पाण्डु ने ब्राह्मणों के द्वारा अपना यह सब हाल भीष्म और धृतराष्ट्र के पास कहला भेजा और यह भी कहा कि अब हम हस्तिनापुर न लौटेंगे।

महाराज पाण्डु का यह संदेश सुनकर भीष्म को बड़ा दुःख हुआ। धृतराष्ट्र भी अपने प्यारे भाई की ऐसी दुःख-कथा सुनकर विकल हो उठे। बहुत दिनों तक वे बड़े व्याकुल रहे फिर भीष्म और विदुर के बहुत समझाने पर कुछ स्वस्थ हुए।

इधर जङ्गल में पाण्डु ने अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर बड़ी कठिन तपस्या की। उन्होंने अपने पापों का प्रायश्चित्त कर डाला। धीरे-धीरे वे एक ब्रह्मर्षि के तुल्य हो गये। वे जङ्गल में रहकर प्रसन्नतापूर्वक अपने दिन बिताने लगे, पर सन्तान-हीन होने का दुःख वे न भूले। कहीं शरीर न छूट जाय इसी डर से वे जितेन्द्रिय होकर रहते थे।

निदान एक दिन महाराज पाण्डु ने अपने इस दुःख की चर्चा अपनी रानियों से की। स्वामी के इस दुःख से कुन्ती के हृदय को बड़ी चोट लगी। उसने पाण्डु से कहा कि एक समय जब

मैं कुआँरी थी, तब दुर्वासा ऋषि मेरे पिता के यहाँ अतिथि होकर आये थे। उन्होंने मेरी अतिथि-सेवा से प्रसन्न होकर एक मन्त्र बतलाया था और कहा था कि इसके द्वारा तुम जिस देवता को याद करोगी वह तुम्हारे पास आकर तुम्हें एक पुत्र देगा। कुन्ती ने यह भी कहा कि दुर्वासा ऋषि की बतलाई हुई तरकीब झूठी नहीं हो सकती, बेचारे ब्राह्मण झूठ बोलना क्या जानें। आप आज्ञा दें तो मैं देवताओं को बुलाकर उनसे सन्तान के लिए प्रार्थना करूँ।

पाण्डु इस बात पर राज़ी हो गये। उन्हीं की सलाह से कुन्ती ने पहले पहल धर्म्मराज को बुलाया और धर्म्मराज ने कुन्ती को जो पुत्र दिया उसका युधिष्ठिर नाम पड़ा। इसी तरह कुछ दिनों पीछे अपने स्वामी की आज्ञा से उसने पवन-देव को बुलाया और पवन के प्रसाद से महाबली भीमसेन पैदा हुए। पाण्डु ने कुन्ती से कहा कि इन्द्र को याद करके उनसे भी एक पुत्र लो। कुन्ती ने ऐसा ही किया और इन्द्र के द्वारा उत्पन्न हुए पुत्र का नाम अर्जुन पड़ा।

कुन्ती के पुत्रों की उत्पत्ति देखकर माद्री को भी पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा हुई। उसने पाण्डु से अपनी इच्छा कह सुनाई। पाण्डु ने सोच-विचारकर कुन्ती से कहा कि किसी देवता को बुलाकर माद्री को भी पुत्र दिला दो। कुन्ती ने माद्री से पूछा कि तुम किस देवता को बुलाना चाहती हो, उसने अश्विनीकुमार का नाम लिया। निदान दोनों

अश्विनीकुमारों के द्वारा नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र माद्री के उत्पन्न हुए।

पाण्डु के ये पाँचों बालक बड़े सुलक्षण थे। आश्रम के रहनेवाले मुनि और उनकी स्त्रियों को ये बड़े प्यारे थे। कुन्ती और माद्री जङ्गल में इनका लालन-पालन करतीं और मुनि लोग इन्हें देख देखकर पुलकित होते। मुनियों की सलाह से वहीं पर उनके सब समयोचित संस्कार हुए और वहीं पर वे अपने माता-पिता को सुख देने लगे।

---

# सातवाँ परिच्छेद

इधर पाण्डु के वनवासी होने पर राज्य का भार धृतराष्ट्र पर पड़ा। हस्तिनापुर के राज्यसिंहासन के वे ही मालिक हुए। गान्धारी राजरानी हुई। आँखों में पट्टी बाँधे हुए भी वह अन्तःपुर का उत्तम प्रबन्ध करती। बाहर से आये हुए अतिथि ऋषि-मुनियों की तो वह बड़ी ही भक्त थी। पति-सेवा और अतिथि-सेवा दो ही गान्धारी के ख़ास काम थे।

इन्हीं दिनों महर्षि वेदव्यास एक बार भूखे-प्यासे राजा धृत-राष्ट्र के यहाँ आये। गान्धारी ने उनकी सेवा का ख़ासा प्रबन्ध किया। महर्षि इससे बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने गान्धारी से कहा, "तुम्हारा जो मनोरथ हो वही वर माँगो।" यह सुनकर गान्धारी अत्यन्त पुलकित हुई। उसने कहा—

हे महर्षि! यदि आप मुझ पर इतनी कृपा करना चाहते हैं तो मुझे यही अशीर्वाद दीजिए कि मेरे पति के समान गुणवाले मेरे सौ पुत्र हों।

"तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी"—यह कहकर व्यासदेव चले गये।

उधर बचपन में, कल्याणकारी शङ्करजी की सेवा करके भी, गान्धारी ने सौ पुत्रों की माता होने का वरदान पाया था;

इधर व्यासदेव से भी उसने यही वर माँग लिया। उसे वीर पुत्रों की माता बनने की बड़ी लालसा थी। पर गर्भवती होने पर भी दो साल तक उसके सन्तान न हुई। इधर हस्तिनापुर में पाण्डु के जेठे पुत्र युधिष्ठिर के जन्म लेने का समाचार पहुँचा। यदि गान्धारी के यथासमय पुत्र उत्पन्न हो जाता तो वही जेठा होता, पर ऐसा न होने से लोकाचार के अनुसार कुन्ती से पैदा हुआ पुत्र ही जेठा माना गया। गान्धारी को अपने इस दुर्भाग्य पर बड़ा दुःख हुआ। इसी दुःख-जनित क्रोध में आकर उसने अपने पेट पर एक घूँसा मारा। फल यह हुआ कि उसका गर्भ गिर पड़ा। गर्भ उस समय मांस का एक पिण्डमात्र था, उसमें सब अङ्ग न बन पाये थे।

गान्धारी को अपनी इस भूल पर पश्चात्ताप हुआ—शोक हुआ। पर अब क्या हो सकता था? अन्त में उसने उस गर्भ को फेंकने की तैयारी की। इसी समय व्यासदेव वहाँ आकर उपस्थित हुए। उन्होंने वह मांसपेशी देखकर गान्धारी से कहा—सौबलेयि! तुमने यह क्या किया?

गान्धारी ने महर्षि से अपनी भूल को छिपाना न चाहा, उसने कहा—महात्मन्! मेरे गर्भवती होने के दो साल बाद तक प्रसव न हुआ। यदि यथासमय ऐसा होता तो मेरा पुत्र जेठा होता। ऐसा न होने से कुन्ती का पुत्र जेठा हुआ। इस पर मैंने अपने दुर्भाग्य को बहुत कोसा और उस पर दुःख किया। दुःख में मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, फिर

मेरी नारी-बुद्धि क्योंकर ठीक रहती ? दुःख के साथ साथ अपने अभाग्य पर मुझे क्रोध भी आया और इसी कारण मेरे हाथ से ऐसा अनुचित काम हो गया।—यह कहकर वह फूट फूटकर रोने लगी। रोते रोते उसने फिर कहा—

हे देव! आप ही ने मुझे सौ पुत्रों की माता होने का वर दिया था। अब मेरे अभिप्राय की आप ही रक्षा करें तो करें, मैं तो सब तरह से हताश हूँ। इस दुःख की बहती हुई अगाध धारा में डूबती हुई मुझ अभागिनी को आप ही की कृपा-नौका का सहारा है; आप ही मेरी रक्षा कीजिए।

व्यासदेव को गान्धारी के विलाप पर बड़ी दया आई। उसे धीरज देते हुए उन्होंने कहा—

हे सुबल-राजपुत्री! तुम शोक न करो। बीते हुए दिनों पर और भूल से किये हुए कामों पर बुद्धिमान् लोग शोक नहीं करते। जो कुछ मेरे मुँह से निकल गया है, परमात्मा की कृपा से, वह मिथ्या न होगा। तुम्हारी यह सन्तान भी नष्ट न होने पावेगी। इसी मांस के पिण्ड से तुम्हारे सौ पुत्र होंगे।

यह कहकर व्यास देव ने आज्ञा दी कि घी से भरे हुए सौ घड़े मँगाये जायँ। फिर उस मांस-पिण्ड पर जल छिड़ककर उसके उन्होंने सौ टुकड़े किये और एक एक टुकड़े को एक एक घड़े में डाल दिया। सब घड़ों में एक एक टुकड़ा

डाल देने पर मालूम हुआ कि भूल से उस मांस-पिण्ड के एक सौ एक टुकड़े हो गये थे। इससे एक टुकड़ा बच रहा। उसे देखकर गान्धारी के मन में एक कन्या प्राप्त करने की इच्छा हुई। यह बात मालूम होने पर व्यासदेव ने एक और घड़ा मँगवाया और उसमें उस टुकड़े को डालकर कहा—इन घड़ों को किसी अच्छी जगह रख दो। दो वर्ष बाद इन्हें खोलना। इनसे तुम्हें सौ पुत्र और एक कन्या प्राप्त होगी।

इसके अनन्तर जिस समय पाण्डु के दूसरे पुत्र भीमसेन का जन्म हुआ उसी समय धृतराष्ट्र के जेठे पुत्र दुर्योधन भी हुए। इस पुत्र के जन्म के समय अनेक प्रकार के अपशकुन हुए। प्रबल वेग से वायु बहने लगी, दिशाओं में जलन उठने लगी, यही नहीं बल्कि और भी अमङ्गल-सूचक चिह्न देख पड़ने लगे। उन्हें देखकर राजा धृतराष्ट्र बहुत घबड़ाये। अच्छे अच्छे कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों और भीष्म तथा विदुर सरीखे विद्वानों को बुलाकर उनसे उन्होंने कहा—

महाशयगण! इस समय आप सब लोग उपस्थित हैं। राजपुत्र युधिष्ठिर सबसे बड़े हैं। उनके गुणों की भी बड़ी भारी प्रशंसा सुनी जा रही है। इसमें सन्देह नहीं कि कुरुकुल की मान-रक्षा वे ही करेंगे; और वे ही राज्याधिकारी होंगे। पर इस समय हम यही जानना चाहते हैं कि हमारा यह जेठा लड़का युधिष्ठिर के बाद राज्य पावेगा या नहीं? इस सम्बन्ध में आपने क्या सोचा है? बतलाइए।

ज्योंही धृतराष्ट्र की बात पूरी हुई कि कौवे काँव काँव करने लगे। सियारिनें रोने लगीं और भाँति भाँति के अमङ्गल-सूचक अशकुन होने लगे।

ब्राह्मणों और बुद्धिमान् विदुर ने इन सब लक्षणों को देखकर कहा कि हे राजन्! आपके इस जेठे पुत्र के पैदा होते ही इस प्रकार के अशकुन हुए हैं, इससे जान पड़ता है कि इसी दुरात्मा के कारण कुरुकुल का संहार होगा। हमारी राय में इसे परित्याग कर देना ही अच्छा है, इसका त्याग न किया जायगा तो बड़े बड़े अनर्थ उठेंगे। महीपाल! यदि वंश रक्षा करने की इच्छा हो तो इसे परित्याग कर दीजिए, अभी आपके और भी निन्नानवे पुत्र होंगे। उनको लेकर आप सुखपूर्वक समय बिता सकते हैं। इसे छोड़ देने ही में आपका और कुरुकुल का कल्याण है।

उन लोगों ने फिर कहा—पृथ्वीपति महाराज! शास्त्रकार लोग कह गये हैं कि यदि एक व्यक्ति को छोड़ देने से कुल की रक्षा होती हो तो उसे अवश्य छोड़ देना चाहिए; यदि कुल को छोड़ने से गाँव की रक्षा होती हो तो कुल भी छोड़ देना अच्छा है; यदि गाँव को छोड़ देने से देश की रक्षा होती हो तो गाँव को भी छोड़ देना कर्तव्य है; और अपनी रक्षा के लिए तो देश को भी छोड़ देना चाहिए। इससे आप अपनी रक्षा और अपने कल्याण के लिए इसका अवश्य ही परित्याग करें।

धृतराष्ट्र विदुर का कहना बहुत मानते थे, विदुर की बातों की वे बड़ी क़दर करते थे। पर इस समय वे बड़े असमंजस में पड़े। एक ओर विदुर का कहना और दूसरी ओर पुत्र का स्नेह, दोनों ही बातें बड़े मार्के की थीं। न वे विदुर के कहने ही को टाल सकते थे और न पुत्र का स्नेह ही उनसे छूट सकता था। पर पुत्र-स्नेह एक ऐसी चीज़ है कि जिसके सामने लोग बड़े से बड़े कर्तव्य भी भूल जाते हैं। इससे पुत्र-स्नेह में आकर उन्होंने विदुर की बात का कुछ जवाब न दिया और उसे टाल दिया। वे दुर्योधन का परित्याग न कर सके। सच है, पुत्र किसे प्यारा नहीं होता ?

दुर्योधन के जन्म के पीछे एक ही महीने के अन्दर व्यासदेव की युक्ति के फल से युयुत्सु, राजा, दुःशासन, दुःसह, दुश्शल, जलसन्ध, सम, सह, विन्द, अनुविन्ध, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्दक, चित्रबाण, चित्रवर्म्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्राङ्ग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषन्दी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्म्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनुदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सद, सुवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी

विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, क्रथन, कुण्ड, धनुर्धर, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, चित्रकुण्डल, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरोम, दीर्घबाहु, व्यूढ़ोरु, कनकध्वज, कुण्डाशी और विरजा ये निन्नानवे पुत्र और दुःशला नाम की एक कन्या और उत्पन्न हुई।

इन सौ पुत्रों की उत्पत्ति, और जिस तरकीब से इनकी उत्पत्ति हुई, उस पर आज-कल के बहुत कम लोगों को विश्वास होगा। पर विज्ञान के सूक्ष्म तत्त्वों के समझनेवाले शायद इसे कल्पना न कहें। जिस भाँति आज-कल के चतुर वैज्ञानिक और माली लोग, एक ही वृक्ष से सैकड़ों क़लमों की सृष्टि करते हैं, इसी भाति सर्वथा सम्भव है कि वेदव्यास ने विज्ञान के बल से ऐसी तरकीब की हो कि गान्धारी के गर्भ से उत्पन्न मांसपेशी के एक सौ एक टुकड़ों द्वारा सौ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हो गई हो। आज-कल के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वृक्षों में भी जीव है। फिर जब जीवधारी वृक्षों की टहनियों द्वारा कलमें लग सकती हैं और वे ही कलमें बढकर बड़ी बड़ी डालियों के रूप में परिणत हो सकती हैं, तो इस भाँति गान्धारी के सौ पुत्रों की उत्पत्ति कोई आश्चर्य की बात नहीं। विज्ञान की बदौलत मनुष्य क्या क्या नहीं कर सकता? जिनकी कभी हम स्वप्न में कल्पना नहीं कर सकते थे और जिनके सच्चे होने पर पहले हमें कभी विश्वास न आता, ऐसी

हीं बहुत सी चीज़ें और बहुत से आविष्कार आज-कल विज्ञान की बदौलत हमारे देखने-सुनने में आते हैं।

हमें यह भी मानना पड़ेगा कि इसी भारतवर्ष में प्राचीन समय में बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने जन्म लिया है। और विज्ञान के गूढ़ तत्त्वों को खोज निकालने और उनका उपयोग करने में यह देश अन्य देशों से बढ़ा चढ़ा था। इससे, महाभारत ऐसे मान्य ग्रन्थ में उल्लिखित, गान्धारी के पुत्रों की उत्पत्ति सरीखी बातों को भी हमें झूठ न कहना चाहिए।

जो बात आज-कल सम्भव है वह किसी समय सम्भव रही हो तो भी आश्चर्य नहीं, और जो बात आज-कल सम्भव है वह किसी समय असम्भव रही हो तो भी आश्चर्य नहीं। परमात्मा लीलामय है!

---

# आठवाँ परिच्छेद

इधर राजर्षि पाण्डु भी जङ्गल में अपने पुत्रों का मुँह देख प्रसन्न होते और आनन्द में रहते थे। ब्राह्मणों के द्वारा उन्हें हस्तिनापुर के समाचार भी मिलते रहते और वे स्वयं भी अपने समाचार वहाँ भेजते रहते।

एक बार वसन्त ऋतु में माद्री को साथ लेकर वन की सैर करने के लिए वे बाहर निकले। उस समय टेसू फूल रहा था, आमों में बौर लगे थे, और जगह जगह सरोवरों में फूले हुए कमलों की सुगन्धि से दिशाएँ सुगन्धित हो रही थीं। वन की ऐसी शोभा देखकर वे बहुत पुलकित हुए। उनके मन में वासना उत्पन्न हो गई और वे अपने व्रत को भूल गये। इससे अचानक उनकी मृत्यु हो गई। विधाता की लीला!

पति की यह गति देखकर माद्री ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। उसका रोना सुनकर उसके दोनों पुत्र, कुन्ती के तीनों पुत्र और कुन्ती वहाँ आई। कुन्ती को भी बड़ा शोक हुआ, पर हो ही क्या सकता था? परमेश्वर की मरज़ी में क्या चारा?

निदान माद्री ने अपने पुत्रों को कुन्ती को सौंपकर कहा कि तुम इनको भी अपने ही पुत्रों की तरह लालन-पालन करना; मैं स्वामी के साथ ही सती हो जाऊँगी। पहले तो कुन्ती इस बात पर राज़ी न हुई, पर जब माद्री ने कहा कि पुत्रों का

जिस प्रकार लालन-पालन तुम कर सकती हो उस प्रकार मुझसे न होगा तब उसने माद्री की बात मान ली।

माद्री फिर पति के मृतक शरीर से लिपट गई और उसने प्राण छोड़ दिये।

राजर्षि पाण्डु और उनकी पत्नी माद्री ने इस प्रकार एक ही साथ परलोक की राह ली। यह देखकर उस आश्रम के देवतुल्य ऋषियों और मन्त्रविद् ब्राह्मणों ने सलाह की कि जब तक पाण्डु इस वन में रहे हमारे ही आश्रम में रहे, इससे उनकी और उनकी स्त्री की मृतक देह को और उनके पुत्रों को हस्तिना-पुर पहुँचा देना हमारा कर्तव्य है। यह सोचकर उन्होंने पाण्डु के मृत शरीर और पाँचों पाण्डवों को साथ लेकर हस्तिनापुर की यात्रा की। विधवा कुन्ती भी पुत्रों के साथ साथ सबके आगे चली। पुत्रों के स्नेह के कारण और पाण्डु का नाम जीवित रखने के लिए माद्री के अनुरोध से उसने प्राण न छोड़े।

यथासमय ये लोग हस्तिनापुर पहुँचे। यह ख़बर सुनकर भीष्म आदि बड़े बूढ़े कौरव, सत्यवती आदि माताएँ और अन्य नगरनिवासी लोग ऋषियों से मिलने आये। ऋषियों की उन्होंने समुचित पूजा की। कुछ शान्त होने पर ऋषियों ने पाण्डु के वनवास से लेकर मृत्यु-समय तक की बातें एक एक करके भीष्म को सुनाईं। सब बातें कहकर उन्होंने पाण्डु के मृतक शरीर और पाँचों पुत्रों को भीष्म के सिपुर्द किया। फिर वे अपने आश्रम को लौट गये।

धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर ने शास्त्र की रीति से पाण्डु और माद्री के मृतक-संस्कार की व्यवस्था की। एक पवित्र स्थान में घी से भीगे हुए उनके मृत-शरीरों का चन्दन की चिता पर एक ही साथ दाह-कर्म किया गया।

पाण्डु की माता अम्बालिका पर माने वज्रपात हुआ। वह बहुत रोई। उसे रोती हुई देखकर कुन्ती भी रोने लगी। कोई भी उस समय ऐसा न था जो उनका विलाप देखकर न रोया हो।

दस दिन बीत जाने पर भीष्म धृतराष्ट्र आदि ने एकत्र होकर दसवाँ इत्यादि किया और सूतक दूर होने पर कुन्ती और पाण्डवों को साथ लेकर वे लोग राजमहलों को लौट आये।

इस शोक से परम दु:खित होकर सत्यवती, अम्बिका और अम्बालिका तीनों वन को चली गईं, वहाँ पर कठिन तपस्या करके उन्होंने इस असार संसार से बिदा ली।

पितृहीन पाण्डवों को देखकर गान्धारी को भी बड़ा शोक हुआ। उसने शोकाकुल कुन्ती को बहुत समझाया और सान्त्वना दी। वह पाण्डवों पर उतना ही प्रेम करने लगी जितना कि अपने पुत्रों पर करती थी। धन्य है! गान्धारी सदृश रमणियाँ आज-कल इस अभागे भारत में कहाँ हैं जो अपने ही पुत्रों के समान दूसरे के भी पुत्रों से प्रेम करें।

गान्धारी और धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से इतना स्नेह और प्रेम किया कि कुन्ती भी धीरे धीरे पति-शोक को भूल गई। पुत्रों के लिए उसे विशेष चिन्तित न होना पड़ा।

दुर्योधन आदि सौ भाइयों के साथ पाण्डव भी आनन्द-पूर्वक रहते, उन्हीं के साथ भोजन करते और साथ ही साथ खेलते कूदते थे। पाण्डव लोग बाहुबल और बुद्धिबल में दुर्योधन आदि की अपेक्षा श्रेष्ठ थे, इससे प्रजा का अनुराग उन पर अधिक था और प्रजा सदा उनकी प्रशंसा करती। यह बात दुर्योधन को अच्छी न लगती।

सबसे बड़े पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर तो बड़े क्षमाशाली थे। वे साक्षात् धर्म्म की मूर्त्ति थे। सब भाइयों के साथ स्वयं दुर्योधन भी उन पर बड़ी श्रद्धा रखता था। पर भीमसेन से इन लोगों की न बनती थी। भीमसेन थे भी बड़े उपद्रवी, वे नाहक़ दुर्योधन आदिक कौरवों को तङ्ग किया करते। साथ खेलते खेलते भीमसेन कौरवों के बाल पकड़कर खींच लेते, उन्हें एक दूसरे से भिड़ा कर दबा देते। कभी किसी को पीट देते और कभी किसी को रुला देते। एक बार जल-विहार करते समय उन्होंने दुर्योधन के एक भाई को अथाह जल में डुबो दिया, उसे डूबता हुआ देखकर दुर्योधन ने युधिष्ठिर से शिकायत की। तब युधिष्ठिर ने भीमसेन को डाँटा और कहा इसे शीघ्र जल से निकालो। भीम ने उसे जल से निकाल दिया; पर दुर्योधन को भीम की यह उद्दण्डता बड़ी बुरी लगी। वह उसी दिन से भीम को शत्रु की तरह देखने लगा।

भीमसेन पराक्रमी भी बड़े थे। दुर्योधन आदि कौरवों में दुर्योधन तो ज़रूर उनके जोड़ का था, पर और भाई उनका

मुक़ाबिला नहीं कर सकते थे। इसी से दुर्योधन इनसे ईर्ष्या भी मानने लगा। उसने मन ही मन सोचा कि यह तो बड़ा बुरा हुआ, बिना भीमसेन को यमलोक भेजे हम किसी तरह सुख से न रहने पावेंगे। इसी से वह मौक़ा ढूँढ़ने लगा कि कब भीमसेन को मारकर निश्चिन्त हो।

भीमसेन ही झगड़े के घर थे। दुर्योधन उन्हीं से अधिक नाराज़ था। अन्य पाण्डवों से उसको इतना कष्ट न था। पर और लोग (पाण्डव) भीमसेन का पक्ष लेते थे इसी से वह उनसे भी नाराज़ था।

यह बात कुन्ती और गान्धारी को भी मालूम हुई कि दुर्योधन और भीमसेन में अनबन है। इधर कुन्ती ने भीमसेन को और उधर गान्धारी ने दुर्योधन को समझाया कि बन्धु-विरोध बड़ी बुरी बात है, आपस में सब लोग हिल मिलकर रहो, पर भीमसेन का कौरवों पर अत्याचार और अन्याय दुर्योधन को इतना असहनीय हो उठा कि उसके मन में एक बात भी न बैठी। उसने भीमसेन के नाश करने का प्रण ही कर लिया।

एक दिन दुर्योधन ने भीमसेन को मारने की एक युक्ति सोची। नदी के किनारे उसने सैकड़ों डेरे लगवा दिये और एक बहुत ही रमणीय खेल-कूद की जगह बनवाई। वहाँ खाने पीने की सामग्री भी भेज दी गई। इस प्रकार की तैयारी करके दुर्योधन ने युधिष्ठिर से कहा—

आज हमने नदी-किनारे डेरे वग़ैरह भेज दिये हैं और

खाने की सामग्री भी भेज दी है। चलो, सब लोग आज जल-विहार करने चलें।

युधिष्ठिर कपटी तो थे नहीं, उन्होंने यह बात मान ली। मनमानी सवारियों पर चढ़कर दुर्योधन आदि सौ कौरव और पाँचों पाण्डव नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ की अनुपम शोभा देखकर पाण्डव लोग बहुत प्रसन्न हुए।

कुछ देर तक इधर उधर सैर करके सब लोग डेरों में लौट आये। कौरव और पाण्डव साथ ही साथ भोजन करने लगे। अनेक प्रकार के व्यञ्जनों की ख़ूब प्रशंसा होने लगी। जो चीज़ एक को अच्छी लगती वह दूसरे को दे देता। इसी बीच में दुर्योधन ने विष मिली मिठाई भीमसेन को दे दी। उन्होंने बेखटके वह मिठाई खा ली।

भोजन कर चुकने के कुछ समय बाद सब लोग जल-विहार करने लगे। जल-विहार करते करते जब शाम हो गई तो सब लौटने लगे, पर विष के प्रभाव से भीमसेन नदी के किनारे ही पड़े रह गये। दुर्योधन की उन्हीं पर नज़र थी। इधर सब लोग अपने अपने कपड़े पहिनने में व्यस्त थे। उधर घात पाकर दुर्योधन ने भीम को अथाह जल में पटक दिया। उस दिन यह बात किसी को मालूम न हुई। सब लोग घर को लौट आये। दुर्योधन भी प्रसन्न मन लौट आया।

घर लौट आने पर युधिष्ठिर को मालूम हुआ कि भीमसेन नहीं लौटे। उन्हें बड़ा शोक हुआ। उन्होंने यह बात कुन्ती से

कही। कुन्ती ने विदुर से कहा कि दुर्योधन भीमसेन का सदा अनिष्ट चेता करता है, इससे आज भीम के न लौटने पर न जाने मेरा चित्त क्यों घबड़ाता है। मुझे दुर्योधन के कामों पर सन्देह रहा करता है।

विदुर ने कहा कि अपने मन का सन्देह तुम किसी से भूलकर भी न कहना। जिसका परमात्मा रक्षक होता है उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। परमेश्वर चाहेगा तो भीमसेन जल्द ही लौट आवेंगे।

विदुर की बात ठीक ही निकली। ईश्वर की कृपा से भीमसेन उस बार किसी तरह बच गये और कुछ दिनों के बाद लौटकर उन्होंने अपना सब हाल कह सुनाया।

युधिष्ठिर बड़े समझदार थे। दुर्योधन की दुष्टता जानकर भी भीमसेन को उन्होंने मना कर दिया कि भाई! यह बात किसी से कहना नहीं।

जिस दिन दुर्योधन ने यह चाल चली उसी दिन से पाण्डव लोग फूँक फूँककर पैर धरने लगे। उनको दुर्योधन के प्रत्येक कृत्य में सन्देह होने लगा।

दुर्योधन और उनके साथियों ने भी जब देखा कि भीमसेन इस बार बच गये तो वे भी भाँति भाँति की मिथ्या बातें बनाकर राजा धृतराष्ट्र का मन पाण्डवों की तरफ़ से फेरने की चेष्टा करने लगे।

---

# नवाँ परिच्छेद

दुर्योधन और उसके भाई पाण्डवों से भले ही द्वेष रखते हों पर गान्धारी पाण्डवों पर वैसा ही प्रेम-भाव रखती थी जैसा कि अपने पुत्रों पर। महाराज धृतराष्ट्र भी अपने भतीजों को पुत्रवत् ही मानते थे।

कौरव और पाण्डव दोनों ही धृतराष्ट्र को बराबर प्यारे थे। पाण्डु के पुत्र होने के कारण युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई पाण्डव कहलाते थे, और कुरु के वंशज होने के कारण पति-व्रता गान्धारी के पुत्र कौरव, पर वास्तव में पाण्डव भी कौरव ही थे, क्योंकि वे भी कुरु के वंशज थे।

धृतराष्ट्र की आज्ञा से कौरवों और पाण्डवों को साथ ही साथ शिक्षा दी जाने लगी। गान्धारी के सौ पुत्र और पाण्डु के पाँचों पुत्र साथ ही शिक्षा पाने लगे। शास्त्र की शिक्षा के अतिरिक्त शस्त्र-शिक्षा का भी प्रबन्ध हुआ। क्योंकि क्षत्रियों के लिए शस्त्र-शिक्षा ही अधिक आवश्यक थी।

महर्षि शरद्वान् के पुत्र कृप हस्तिनापुर ही में रहते थे। अपने पिता से उन्होंने शस्त्र-विद्या की अच्छी शिक्षा पाई थी, यहाँ तक कि उन्हें लोग 'आचार्य्य' कहते थे। ये ही कृपा-चार्य्य सब राजकुमारों को अस्त्र-विद्या सिखाने लगे।

जब कौरवों और पाण्डवों ने गुरु कृपाचार्य्य से साधारण अस्त्र-शिक्षा प्राप्त कर ली तब महामति भीष्म उन्हें ऊँचे दरजे की शिक्षा देने के इरादे से एक ऐसा गुरु ढूँढ़ने लगे जिसे अस्त्र-विद्या साङ्गोपाङ्ग आती हो और जो बाण चलाने में सबसे अधिक कुशल हो।

संयोग से महात्मा कृपाचार्य्य के बहनोई द्रोणाचार्य्य हस्तिनापुर आये। ये महर्षि भरद्वाज के पुत्र थे। महर्षि अग्निवेश के आश्रम में इन्होंने धनुर्वेद और अस्त्र-विद्या की शिक्षा पाई थी।

भीष्म ने द्रोणाचार्य्य का बड़ा शिष्टाचार किया और उनसे कौरवों और पाण्डवों को अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की। भीष्म के शिष्टाचार से अत्यन्त प्रसन्न होकर द्रोण ने कहा—

महात्मा परशुराम ने बिना किसी कोर-कसर के हमें धनुर्वेद की शिक्षा दी है, उनके पास जितने दिव्य दिव्य अस्त्र-शस्त्र थे वे भी उन्होंने हमें दे दिये हैं। इससे हम आपके राजकुमारों को अच्छी से अच्छी शिक्षा दे सकेंगे।

भीष्म ने द्रोणाचार्य्य को बहुत सा धन देकर राजकुमारों को उनके सिपुर्द किया। अब गुरु द्रोण उन्हें शस्त्र-शिक्षा देने लगे।

राजकुमारों के साथ ही साथ द्रोणाचार्य्य के पुत्र अश्वत्थामा और सारथि के द्वारा पाले गये कुन्ती के पुत्र वसुसेन भी शस्त्रविद्या सीखते थे। पाण्डु से विवाह होने के पहले

ही दुर्वासा ऋषि के बताये हुए मन्त्र से सूर्यदेव को बुलाकर कुन्ती ने परीक्षा की थी कि ऋषि का बतलाया हुआ मन्त्र सच्चा है या झूठा। फल यह हुआ कि ऋषि का मन्त्र सच्चा निकला और सूर्य्यदेव के अंश से कुन्ती के एक पुत्र पैदा हुआ। कुन्ती उस समय ब्याही न गई थी, इससे उसने उस बालक को जल में डाल दिया। संयोग से कुरुराज के सारथि अधिरथ ने उस बालक को बहते हुए देखा और वे उसे उठा लाये। उनकी स्त्री राधा ने उसका लालन-पालन किया और उसका नाम पड़ा वसुसेन। ये ही वसुसेन दुर्योधन के बड़े मित्र थे, इन्हीं का नाम कर्ण भी था। शस्त्र-विद्या सीखनेवाले हमजोलियों में अर्जुन बड़े तेज़ निकले। बाण चलाने में उन्हें बड़ा अभ्यास हो गया। इसी से अश्वत्थामा अर्जुन से ईर्ष्या करने लगे। इधर दुर्योधन को भी अर्जुन से ईर्ष्या थी। फिर क्या था? अश्वत्थामा भी दुर्योधन के मित्र हो गये।

जब गुरु द्रोण अपने शिष्यों को सब विद्या सिखा चुके तब उनकी परीक्षा हुई। गदा चलाने में भीमसेन और दुर्योधन बराबर रहे। बाण चलाने में अर्जुन सबसे बढ़कर निकले; उन्होंने तीर-तलवार चलाने के सैकड़ों अद्‌भुत अद्‌भुत कर्तब दिखाये। पर जितने काम उन्होंने कर दिखाये, वे सब कर्ण ने भी कर दिखायें। इससे दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कर्ण को अङ्गदेश का राज्य देकर उनके साथ मित्रता कर ली।

अर्जुन की बराबरी का दावा सिर्फ़ कर्ण को था। युधिष्ठिर को कर्ण के पराक्रम की बात मालूम थी। दुर्योधन के साथ कर्ण की मित्रता का होना युधिष्ठिर को अच्छा न लगा। वे कुछ चिन्तित से हो गये। यह तो किसी को मालूम था ही नहीं कि कर्ण भी कुन्ती के ही पुत्र हैं।

दुर्योधन पाण्डवों से पहले ही से असन्तुष्ट था। इधर भीमसेन का व्यवहार भी कौरवों के साथ वैसा ही होने लगा। दुर्योधन को यह और भी बुरा लगा। धृतराष्ट्र भी पाण्डवों के पराक्रम, और अपने पुत्रों की कमज़ोरी की बात जान गये।

एक दिन धृतराष्ट्र ने अपने नीतिज्ञ मन्त्री कणिक को अपने पास बुलाया। कणिक बड़ी चाल का आदमी था। उसने धृतराष्ट्र को सलाह दी कि महाराज! शत्रुओं से आपको बड़ा डर है। उस डर को दूर करने के लिए पाण्डवों का जड़ से नाश कर देना चाहिए। उसने यह भी कहा कि छोटे से छोटे शत्रु की भी उपेक्षा करना ठीक नहीं; राजनीति का यही नियम है।

दुर्योधन इत्यादि की भी यही सलाह थी। इससे धृतराष्ट्र का मन कुछ विचलित सा हो गया। परन्तु अन्याय और अधर्म्म करने के लिए उनका साहस न होता था, इसी से उनसे कुछ करते धरते न बन पड़ा।

पहले तो धृतराष्ट्र पाण्डवों के साथ अन्याय करने को किसी तरह राज़ी न हुए। पर दुर्योधन ने इस पर बड़ा हठ किया। उसने धृतराष्ट्र से कहा—

हे पिता! पाण्डवों के कारण रात को हमें अच्छी नींद नहीं आती। हम शोक की आग में जला करते हैं। इस कष्ट से आप हमारी रक्षा कीजिए, नहीं तो हम जीते न बचेंगे।

पुत्रस्नेह के कारण धृतराष्ट्र का चित्त डाँवाडोल हो उठा। बात भी सब सधी थी। एक दिन राज-सभा में किसी चतुर व्यक्ति ने वारणावत नामक नगर की बड़ी तारीफ़ की। पाण्डव लोग उसे देखने के लिए बड़े उत्सुक हुए। इसी अवसर पर धृतराष्ट्र ने कहा कि हे पुत्र! सभी लोग वारणावत की प्रशंसा करते हैं, इच्छा हो तो तुम भी जाकर देख आओ।

इस बात पर युधिष्ठिर राज़ी हो गये। उनके मन में उसी समय कुछ सन्देह सा भी पैदा हुआ पर उन्होंने उसकी परवाह न की।

इधर दुर्योधन ने एक मन्त्री को साधा; उसका नाम था पुरोचन। वह वारणावत को पहले ही से भेज दिया गया; वहाँ पहुँचकर उसने लाख का घर बनवाया। कुछ दिनों के बाद शुभ मुहूर्त में पाण्डव लोगों ने भी हस्तिनापुर से वारणावत के लिए यात्रा की। विदुर को किसी तरह दुर्योधन की कूट-नीति की ख़बर मालूम हो गई। इसलिए उन्होंने, इशारे से युधिष्ठिर को बतला दिया कि शत्रु की चालों से होशियार रहने की ज़रूरत है। युधिष्ठिर भी उनके इशारे को समझ गये।

जब पाण्डव लोग वारणावत पहुँचे, पुरोचन ने नगर-निवासियों को साथ लेकर उनका बड़ा स्वागत किया। सब लोग

उसी लाखवाले मकान में जाकर ठहरे, जो इस तरकीब से बनाया गया था कि आग लगाते ही जल उठे। वहाँ रहने पर युधिष्ठिर को लाख और चर्बी मिली चीज़ों की दुर्गन्धि सी ज्ञात हुई। विदुर के इशारे को वे समझ तो गये ही थे, अब दुर्योधन की चाल भी खुल गई। वे होशियार हो गये और घर के भीतर से बाहर को एक सुरङ्ग खोदने लगे। थोड़े ही दिनों में वह छिपी हुई सुरङ्ग उन्होंने तैयार कर ली। फिर पाण्डवों ने ही उस घर में आग लगा दी। वे तो सुरङ्ग-द्वारा बाहर निकल गये, पर पुरोचन उसी में जल मरा। वे चलते चलते एक जङ्गल में, जो दक्षिण की ओर था, जा पहुँचे।

माता कुन्ती के साथ वे जङ्गल में आनन्द से रहने लगे। कोई उन्हें पहचान न सके, इसलिए उन्होंने अपना वेश भी बदल डाला। कुछ भी हो, फिर भी जङ्गल में तरह तरह की आफ़तें रहती हैं; पर पाण्डव लोग बड़े पराक्रमी और धैर्यशाली थे, वे उन तकलीफ़ों को झेलते गये।

एक दिन जङ्गल ही में व्यासदेव से उन लोगों की भेंट हो गई। उनकी सलाह से पाण्डवों को अपनी माता समेत एकचक्रा नगरी में आना पड़ा। वहाँ सब लोग एक ब्राह्मण के घर में रहने लगे। समय के फेर ने यहाँ तक कर दिया कि बेचारे राजपुत्र भिक्षा माँग लाते और उसी से पेट भरते थे। वही राजपुत्री, राजरानी और राजमाता कुन्ती उसी भिक्षा से पाये हुए अन्न को अपने पुत्रों को बाँटकर खिलाती और

स्वयं भी कुछ खा लेती। फिर भी कुन्ती के पुत्र धर्म्म को नहीं भूले; वे उस ब्राह्मण की भी सहायता करते रहे, जिसके घर में वे रहते थे।

इधर हस्तिनापुर में ख़बर पहुँची कि वारणावत् में जिस घर में पाण्डव लोग रहते थे उसमें आग लग गई और सब स्वाहा हो गये। लोगों ने जाना कि बेचारे पाण्डव भी जल मरे। दुर्योधन आदि मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। धृत-राष्ट्र ने भी दिखावे के लिए बड़ा शोक किया। विदुर इस रहस्य को जानते थे, पर रहस्य छिपाने के लिए दिखावे में वे भी बहुत रोये।

अन्तःपुर में पतिव्रता गान्धारी ने भी यह ख़बर सुनी। उसे क्या ख़बर थी कि यह चक्र-जाल उसी के दुरात्मा पुत्रों का रचा हुआ है। वह बेचारी बहुत रोई। उसका रोना सच्चा रोना था। उसे इस ख़बर से बड़ा धक्का पहुँचा। उसे कुन्ती के लिए उतनी ही वेदना हुई जितनी एक सगी बहिन के लिए होनी चाहिए, और पाण्डवों के लिए भी उतना ही दुःख हुआ जितना कि अपने पुत्रों का अनिष्ट होने से होता।

---

# दसवाँ परिच्छेद

विधाता की लीला बड़ी विचित्र है। वह किस समय क्या करता है, यह किसी को मालूम नहीं। जिस तरह कल्पना किये बिना ही दु.ख आकर मनुष्य को प्राप्त होते हैं, वही हाल सुखों का भी है। न दुख मिलते देर लगती है न सुख मिलते।

अब तक पाण्डव बेचारे दु:ख ही भोगते रहे। लड़कपन ही में पिता की मृत्यु, कौरवों का अत्याचार, निराश्रय होकर जङ्गल जङ्गल घूमना, यही सब कुछ वे सहते रहे। पर अब सहसा उनके भी भाग्य का सितारा चमकता है। दु:ख की बदली अपने हट जाने की सूचना देती है और सुख के चन्द्रमा की किरणें अपना प्रकाश फैलाने का रङ्ग जमाती हैं।

एक दिन प्रात:काल का समय था। कुन्ती के साथ पाण्डव लोग जङ्गल में जा रहे थे। मन्द मन्द वायु उनके शरीर में लगकर उन्हें सुखी कर रही थी। एकाएक रास्ते में उन्हें बहुत से ब्राह्मण मिले जो स्वयंवर देखने जा रहे थे। ब्राह्मणों ने पाण्डवों को भी अपने ही समान ब्राह्मण समझकर कहा—

तुम लोग हमारे साथ पाञ्चाल देश को चलो। वहाँ पर एक विचित्र उत्सव होनेवाला है। राजा द्रुपद की कमलनयनी कन्या का स्वयंवर है। बड़े बड़े प्रतापी नृपतिगण वहाँ पर

आयेंगे। हम भी वही स्वयंवर देखने जाते हैं। देखें राज-कन्या किस राजा के गले में जयमाल डालती है।

यह सुनते ही अर्जुन की दाहिनी भुजा फड़कने लगी, उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया और अपने धनुष की ओर उन्होंने एक मर्म्म-भरी दृष्टि डाली। फिर भी वे मौन ही रहे। पर युधिष्ठिर को वहाँ चलने के लिए राज़ी जानकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

ब्राह्मणों के साथ साथ पाण्डव लोग भी पाञ्चाल नगर में जा पहुँचे। देश-देशान्तर से आये हुए राजा लोग जहाँ उतरे थे उन सब स्थानों और नगर को अच्छी तरह देखकर एक कुम्हार के घर में वे जा ठहरे।

वहां पर उन्होंने सुना कि राजा द्रुपद का यह प्रण है कि हम अपनी कन्या का विवाह उसी धनुर्धारी के साथ करेंगे जो हमारे निश्चित लक्ष्य को विद्ध कर लेगा।

पर निश्चित लक्ष्य ऐसा वैसा न था जिसे साधारण तीर-न्दाज़ों के तीर बींध देते। लक्ष्य भेदने के लिए जो धनुष बन-वाया गया था उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर झुकाना ही कठिन काम था; फिर लक्ष्य बींधने की बात का क्या ठिकाना! किसकी ताब थी जो आकाश-यन्त्र में लटकते और हिलते हुए निशाने को बींध दे।

एक ओर द्रौपदी की सुन्दरता की चर्चा इस प्रकार फैल चुकी थी कि लोग सोचते थे, शायद तीनों लोकों में द्रौपदी

के बराबर सुन्दरी रमणी नहीं; दूसरी ओर राजा द्रुपद के प्रण की बात भी इतनी प्रसिद्ध हो चली थी कि अधिक लोग तो उसकी पूर्त्ति होना असम्भव ही मानते थे। पर द्रौपदी के रूप की जीत हुई। राजा लोग द्रौपदी के पाने की इच्छा न छोड़ सके। कुरुराज दुर्योधन, उनके मित्र कर्ण, यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण, बलदेव, शल्य, शिशुपाल और जरासन्ध इत्यादि बहुत से राजा आये।

स्वयंवर के मैदान में राजा लोगों की भीड़ थी। दुर्योधन का राजसी ठाट उनके कुरुराज होने की गवाही दे रहा था। इधर कर्ण का चमकता हुआ चेहरा और ऊँचा ललाट अलग ही उनके तेज की गवाही दे रहा था। श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव की मण्डली सबसे न्यारी थी। शिशुपाल, जरासन्ध, शल्य इत्यादि नृपतिगण भी ठाट-बाट में कम न थे। वहीं एक कोने में ब्राह्मणों के साथ साथ पाँचों पाण्डव भी खड़े थे। जैसे बदली के भीतर छिपे हुए सूर्य्य का तेज छिपा नहीं रहता इसी प्रकार अर्जुन का तेज भी छिप न सका। श्रीकृष्ण इस बात को ताड़ गये। अर्जुन को पहचानकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

राजकुमारी द्रौपदी भी अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ सुन-हरी जयमाला लिये हुए रङ्ग-भूमि में पधारी। उसकी अलौ-किक सुन्दरता देखकर सब राजा मुग्ध हो गये, उन्हें अपने कर्त्तव्य का ध्यान जाता रहा। पर महाबली कर्ण ने द्रौपदी की ओर निगाह भी न डाली—वे बराबर निशाने की ओर ही

देखते रहे। उधर ब्राह्मण-वेशधारी अर्जुन ने एक बार द्रौपदी को देखा; फिर उस पर से उन्होंने अपनी निगाह हटा ली और निशाने को फिर देखा और देखकर पुलकित हो उठे।

इधर कुरुराज दुर्योधन, शल्य, वङ्गाधिपति, शिशुपाल इत्यादि ने अपना अपना पराक्रम दिखलाया, पर बेकार! निशाना मारना तो दूर रहा वे धनुष को उठाकर चढ़ा भी न सके। इससे वे लोग बहुत लज्जित हुए। उनके चेहरे सूख गये और उन्होंने द्रौपदी की आशा छोड़ दी।

अपने प्यारे मित्र दुर्योधन को लौटते हुए देखकर कर्ण में अदम्य उत्साह हो आया। वे झपट कर धनुष के पास जा पहुँचे। पहुँचते पहुँचते उन्होंने बड़ा पराक्रम दिखलाया। उस धनुष को उन्होंने उठा लिया, उसे झुका दिया और उस पर प्रत्यञ्चा भी चढ़ा दी। उधर दुर्योधन अपने मित्र की प्रशंसा करने लगे, उन्होंने कर्ण को और भी उत्साहित किया। कुरुराज के मुँह से निकले हुए अपनी प्रशंसा के शब्दों को सुनकर कर्ण और भी पुलकित हुए। उन्होंने बाण लेकर निशाना मारने की तैयारी की। पाण्डव लोग इससे बहुत घबराये। श्रीकृष्ण तो व्याकुल हो हो गये। वे कर्ण का पराक्रम जानते थे; उन्हें यह भी विश्वास था कि कर्ण अचूक निशाना मारते हैं।

पर श्रीकृष्ण बड़ी चाल के आदमी थे। वे चिल्ला उठे "कर्ण का पालन कुरुराज के सारथि अधिरथ ने किया है। इनका तो

सूत-वंश से सम्बन्ध है।" कृष्ण की हाँ में हाँ मिलानेवाले लोग भी यही चिल्ला उठे।

कर्ण के हाथ से अगर बाण निकल गया होता तो अवश्य ही वह निशाना बाँधकर लौटता। पर कर्ण इस कोलाहल को सुनने के लिए कुछ रुक से गये।

इसी समय उन्होंने द्रौपदी को यह कहते हुए सुना कि "मैं सूत-पुत्र के साथ विवाह न करूँगी।"

कर्ण बड़े अभिमानी थे। द्रौपदी की सुन्दरता को उन्होंने तुच्छ से भी तुच्छ समझा। उसकी मोहिनी-शक्ति का कर्ण के हृदय पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। प्रत्युत उसी समय उनके हृदय में द्रौपदी की ओर से घृणा हो गई। उन्हें उस समय क्रोध-पूर्ण हँसी आई और धनुष-बाण को उन्होंने पृथ्वी पर फेंक दिया।

इसके बाद ब्राह्मणों की मण्डली से अर्जुन निकले। इन्हें देखते ही द्रौपदी की तबीयत इनकी ओर झुक गई। अर्जुन ने धनुष-बाण लेकर बात की बात में वह निशाना बाँध दिया।

अब तो बात ही क्या थी? चट द्रौपदी ने जयमाला इनके गले में डाल दी।

कुछ राजा लोगों को यह बुरा लगा कि राजाओं के रहते राजकन्या को एक ब्राह्मण ले जाय! वे लोग अर्जुन से लड़े भी, पर उन्हें अर्जुन के सामने हार ही माननी पड़ी।

धीरे धीरे यह बात भी स्पष्ट हो गई कि लक्ष्य-भेद करने-वाले तीसरे पाण्डव अर्जुन ही हैं। राजा द्रुपद इस संवाद को

पाकर बहुत प्रसन्न हुए। श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन का पता लगा लिया और उनसे मिलने के बाद वे अपनी राजधानी को लौट गये।

पाण्डव लोग माता के बड़े भक्त थे। उन्होंने माता की आज्ञा से कभी मुँह नहीं मोड़ा। माता ही की आज्ञा से द्रौपदी का विवाह पाँचों भाइयों के साथ होने का निश्चय किया गया।

पहले तो राजा द्रुपद इस बात पर राज़ी न हुए और द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न को भी यह बात स्वीकार न थी। पर युधिष्ठिर ने इस विषय पर बड़ी बड़ी युक्तिपूर्ण बातें कहीं। उन्होंने कहा—पाँचों भाइयों के साथ द्रौपदी का विवाह होना अधर्म्म नहीं। देश, काल और अवस्था के भेद से धर्म का भेद होता है। अर्थात् जो बात एक समय, एक जगह, एक हालत में अधर्म समझी जा सकती है वही बात दूसरे समय, दूसरी जगह, दूसरी हालत में धर्म-सम्मत हो सकती है।

निदान राजा द्रुपद इस बात पर राज़ी हो गये और शुभ लग्न में पाँचों पाण्डवों के साथ द्रौपदी का विवाह हो गया।

इधर हस्तिनापुर में भी ख़बर पहुँची कि पाण्डव लोग जीवित हैं और उन्हीं लोगों ने द्रौपदी से विवाह किया है। इस बात को सुनकर विदुर बहुत प्रस हुए। उन्होंने धृतराष्ट्र के पास जाकर ताने से कहा—

महाराज! भाग्य के बल से द्रौपदी के स्वयंवर में कौरव लोग विजयी हुए हैं। ( पाण्डव भी कुरु के वंशज होने के कारण कौरव थे। )

इस गूढ़ बात का अर्थ धृतराष्ट्र न समझे। उन्होंने समझा कि दुर्योधन ने ही द्रौपदी को पाया है। इससे उन्होंने कहा कि यह तो बड़े सौभाग्य की बात है। दुर्योधन को द्रौपदी का पाना बड़ा अच्छा हुआ।

तब विदुर ने खोलकर कहा—महाराज! हम दुर्योधन की बात नहीं कहते। पाण्डव लोग सौभाग्य से लाक्षागृह में जलने से बच गये हैं। उन्हीं को द्रौपदी प्राप्त हुई है।

धृतराष्ट्र ने फिर कहा—यह भी कुछ कम प्रसन्नता की बात नहीं है, विदुर! पाण्डवों का यह शुभ समाचार सुनकर हम अत्यन्त प्रसन्न हैं।

पतिव्रता गान्धारी ने भी यह शुभ समाचार सुना। वह अत्यन्त ही पुलकित हुई। किसी को अपनी खोई हुई निधि मिल जाने से जैसी प्रसन्नता होती है इसी प्रकार गान्धारी के आनन्द की सीमा न रही।

पाण्डवों पर गान्धारी अपने पुत्रों के समान ही प्रेम करती थी। उसने धृतराष्ट्र से जाकर निवेदन किया कि पाण्डवों को बुलाकर उन्हें भी राज्य का आधा भाग दे दिया जाय। उसने कहा—

पाण्डु ने हमारे साथ सदा ही भला व्यवहार किया है। कुन्ती और माद्री सदा ही मेरी ख़ातिर करती रही हैं। इससे उनके पुत्रों को भी हमें अपने ही पुत्रों के बराबर समझना चाहिए।

गान्धारी की यह बात सुनकर धृतराष्ट्र बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने अपनी अर्द्धाङ्गिनी के हृदय की उदारता की मन ही मन बड़ी प्रशंसा की। विदुर को उन्होंने पाञ्चाल भेजकर पाण्डवों को कुन्ती और द्रौपदी-समेत हस्तिनापुर में बुलवा लिया।

दुर्योधन ने फिर भी बड़ी चालें चलीं पर धृतराष्ट्र और गान्धारी ने उसका कहना न माना। गान्धारी दुर्योधन को सदा यही शिक्षा देती रही कि बन्धु-विरोध का फल भला नहीं होता; कौरवों और पाण्डवों को मिलकर रहना चाहिए।

जब पाण्डव लोग हस्तिनापुर आ गये, धृतराष्ट्र ने यह सोचकर कि जिससे भविष्य में कौरवों और पाण्डवों में बिगाड़ न हो, राज्य के दो विभाग कर दिये। हस्तिनापुर की प्राचीन राजधानी पर दुर्योधन का अधिकार रहा और पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ नामक नगर को अपनी राजधानी बनाया। पाण्डव लोग भी गान्धारी को माता ही की दृष्टि से देखते रहे और धृतराष्ट्र पर भी उनकी भक्ति वैसी ही रही।

---

## ग्यारहवाँ परिच्छेद

किसी किसी का अनुमान है कि आज-कल की दिल्ली नगरी, जिसे सारे भारत की राजधानी होने का सौभाग्य प्राप्त है, उस समय इन्द्रप्रस्थ के नाम से प्रसिद्ध थी। सुनते हैं, दिल्ली के आस पास अब भी इन्द्रप्रस्थ के पुराने मन्दिरों और महलों के चिह्न पाये जाते हैं।

कुछ भी हो, पाण्डवों ने नई राजधानी की प्रतिष्ठा करके उसकी सुन्दरता बढ़ाने में कोई कसर न रक्खी। उन्होंने नगर के चारों ओर एक शहरपनाह बनवाई और उसके इर्द गिर्द चारों ओर गहरी खाई खुदवा दी। ऐसा करने से नगर पर शत्रुओं के एकाएक आक्रमण करने का भय जाता रहा। चौड़ी चौड़ी सड़कें, सिलसिलेवार वृक्षों की क़तारें, सुन्दर सुन्दर रमणीय बाग़ीचे और साफ़ जल से भरे हुए तालाब नगर की शोभा बढ़ाने लगे। जगह जगह पर बढ़िया इमारतें, मन्दिर, बाज़ार और धर्म्मशाला इत्यादि बन जाने के कारण नगर की अद्वितीय शोभा हो गई। पाण्डवों का व्यवहार सच्चा और धर्म्मानुकूल था। वे अपनी प्रजा की बड़ी रक्षा करते थे। उनके राज्य में व्यापार करने के लिए बड़े बड़े

सुविधाएँ थीं। इसी से देश देश के व्यापारी उनके राज्य में आने और वहीं बसने लगे। थोड़े ही दिनों में इन्द्रप्रस्थ धन-धान्य और शोभा में हस्तिनापुर से भी बढ़ गया।

पाण्डवों को रमणी-रत्न द्रौपदी मिल जाने पर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन आदिक अपने पुत्रों के विवाह भी अच्छे अच्छे वंशों की राजकुमारियों से कर दिये। राज्यलक्ष्मी और गृहलक्ष्मी दोनों सुखों से परिपूर्ण कौरव लोग हस्तिनापुर में और पाण्डव इन्द्रप्रस्थ में रहने लगे।

गान्धारी ने सोचा था कि इस प्रकार राज्य बट जाने और एक दूसरे से दूर रहने पर उसके पुत्रों और कुन्ती के पुत्रों का द्वेष मिट जायगा। पर बात इसके विपरीत हुई। पाण्डव-द्वेषी दुर्योधन पाण्डवों का सुख न देख सका। पाण्डव लोग दुर्योधन की इस ईर्ष्या को जानते थे, पर इससे उन्हें क्या? वे बराबर अपनी उन्नति ही करने में लगे रहे। यहाँ तक कि उन्होंने अपने पड़ोसी राजाओं को पराजित करके उन्हें अपने अधीन कर लिया। इसके पीछे उन्होंने राजसूय यज्ञ करने की तैयारी की। उस समय अद्वितीय प्रतापशाली और चक्रवर्ती राजाओं को छोड़कर और कोई राजसूय यज्ञ नहीं कर सकता था। जो राजा इस यज्ञ का अनुष्ठान करता वह सबसे बड़ा समझा जाता और अन्यान्य राजाओं को उसकी प्रधानता स्वीकार करनी पड़ती। जो राजा प्रधानता न स्वीकार करते उनके साथ युद्ध में निपटारा होता।

इस यज्ञ के अनुष्ठान के लिए युधिष्ठिर ने अपने मित्र कृष्ण की सलाह ली। उनकी सम्मति पाने पर प्रतिद्वन्द्वी राजाओं को अर्जुन और भीम ने युद्ध में नीचा दिखाया। जिस किसी ने राज़ी राज़ी पाण्डवों की प्रधानता न स्वीकार की उसे हरा-कर पाण्डवों ने उससे अपना आतङ्क स्वीकार कराया। युधि-ष्ठिर कुलश्रेष्ठ थे, इसी से दुर्योधन को भी उनकी श्रेष्ठता स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु लोग पाण्डवों की जितनी ही प्रशंसा और श्लाघा करते दुर्योधन को उतना ही दुःख होता। ईर्ष्या की अग्नि से भीतर ही भीतर उनका हृदय जलने लगता, वे इसी चिन्ता में लग जाते कि ऐसी कौन सी तदबीर की जाय जिससे पाण्डवों का नाश ही हो जाय।

महारानी गान्धारी के सगे भाई और महाराज दुर्योधन के मामा शकुनि अधिकतर हस्तिनापुर ही में रहते। एक तो सम्बन्ध ही निकट का था। फिर दुर्योधन की और उनकी प्रकृति भी मिलती जुलती थी, इसी से दोनों में गाढ़ा स्नेह था। दोनों एक दूसरे से सलाह करके काम करते। भला आदमी दूसरे को भली ही सलाह देता है और बुरे आदमी से बुरी ही सलाह मिल सकती है। इससे शकुनि से दुर्योधन को जो परामर्श मिलता उसे असत् परामर्श कहने में सङ्कोच ही क्या? पाण्डवों की बढ़ती देखकर उन लोगों ने सलाह की कि बाहुबल से पाण्डवों को जीतना आसान नहीं इसलिए किसी कौशल से उनका सर्वनाश करना चाहिए। उनकी

यही सलाह पक्की हो गई। उस समय राजाओं में यह रीति थी कि यदि कोई युद्ध करने के लिए अथवा जुआ खेलने के लिए उन्हें बुलौआ दे तो वे उससे इनकार न कर सकते थे। ऐसे समय इनकार करनेवाला कायर गिना जाता।

शकुनि जुआ खेलने में बड़े प्रवीण थे। इस काम में उन्हें असाधारण निपुणता प्राप्त थी। उस समय उनके मुक़ाबिले में कोई खिलाड़ी न था। यह बात मशहूर थी कि शकुनि का दाँव, कर्ण का लक्ष्य और अर्जुन का बाण तीनों अचूक हैं। इससे यही तय हुआ कि शकुनि दुर्योधन की ओर से जुआ खेलें और द्यूत-क्रीड़ा में युधिष्ठिर को हराकर उनका सर्वस्व जीत लें।

जब युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दुर्योधन गये थे तब वहां पर, शकुनि के सामने ही, भीम ने उनकी दिल्लगी की थी। द्रौपदी ने उन्हें ताने की जो बातें सुनाई थीं वे उनका कलेजा फाड़े देती थीं। उस अपमान को वे किसी तरह न भूल सकते थे। भीमसेन के कटु वाक्य उनके हृदय में काँटे की तरह चुभा करते थे। पर जिस दिन उनमें और शकुनि में युधिष्ठिर का सर्वस्व हरण करके पाण्डवों को नीचा दिखाने की बातचीत हुई, उसी दिन से और उसी आशा में उनका कलेजा कुछ ठण्ढा हुआ। शकुनि ने दुर्योधन को और भी उत्साहित करने के लिए कहा—

राजा युधिष्ठिर को जुआ खेलने का बड़ा चस्का है, पर उन्हें खेल नहीं आता। हम समझते हैं, जुआ खेलने में आज

तक हमसे कोई नहीं जीता, युधिष्ठिर तो हमें क्या जीतेंगे? इसलिए उन्हें जुआ खेलने के लिए बुलाओ। फिर तुम्हारे मन की बात पूरी होने की हमारी ज़िम्मेदारी है। पर इस विषय में पहले अपने पिता को राज़ी कर लो। उनकी आज्ञा पाकर ही युधिष्ठिर को नेवता देना ठीक होगा।

दुर्योधन ने कहा—पिता से इस तरह की आज्ञा प्राप्त कर लेना हमारे बस की बात नहीं। पिता हमें ऐसी आज्ञा न देंगे। तुम्हीं किसी तरकीब से उन्हें राज़ी कर लो।

शकुनि इसके लिए भी तैयार हो गये।

एक दिन अवसर देखकर उन्होंने दुर्योधन के मन की बात धृतराष्ट्र से कही। पुत्र की यह दशा सुनकर बूढ़े धृतराष्ट्र को बड़ा दुःख हुआ। पहले तो वे जुआ खेलने के लिए युधिष्ठिर को बुलाने पर राज़ी न हुए, पर जब दुर्योधन ने बड़ा हठ किया तो उन्हें मजबूर होकर उसके लिए अनुमति देनी पड़ी।

फिर भी उन्होंने विदुर को बुलाकर इस मामले में उनकी सम्मति माँगी। विदुर बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने धृतराष्ट्र को इसके लिए मना किया, ऊँच नीच सभी कुछ सुझाया। पर धृतराष्ट्र ने कहा—

दुर्योधन को मना करना असम्भव है। विदुर! सब कुछ दैव के हाथ में है। दैव ही इसका कारण है। यदि दैव प्रसन्न हो गया तो कोई विपद न आवेगी। इससे तुम बेखटके युधिष्ठिर के पास जाओ और उन्हें खेलने के लिए हमारी तरफ़ से न्योता दो।

विदुर को इससे बड़ा ही दुःख हुआ, पर करते क्या ? वे युधिष्ठिर के पास गये और सन्देश कहकर उन्हें बुला लाये। द्रौपदी आदि स्त्रियाँ और उनके भाई लोग भी उनके साथ आये।

जुआ खेलने की बात पहले ही से तय थी। जुआ होने लगा। यह बात तय हुई कि युधिष्ठिर और दुर्योधन में तो हार जीत हो, पर दुर्योधन के बदले युधिष्ठिर के साथ शकुनि खेलें। शकुनि जो कुछ हार जायँगे उसे दुर्योधन हार स्वीकार करेंगे और जो कुछ वे जीतेंगे वह दुर्योधन का होगा।

युधिष्ठिर किसी न किसी तरह इस बात पर भी राज़ी हो गये और उन्होंने मणियों से जड़ा हुआ सोने का एक हार दाँव में रक्खा

दुर्योधन की ओर से भी बहुत से मणियों के ढेर दाँव पर रक्खे गये।

शकुनि ने पासा फेंकते ही कहा "हम जीते"।

युधिष्ठिर को इस हार पर बड़ा क्रोध आया। सोने के हार की हार ने उन्हें खेलने के लिए और भी उत्साहित किया। पर शकुनि से बाजी ले जाना आसान बात न थी। वे कुछ जुआरी तो थे नहीं, केवल शत्रु की प्रतारणा को सहन न करके ही इस कार्य में रत हुए थे। इस कारण हारते ही चले गये। धन, रत्न, अलङ्कार, हाथी, घोड़े, यहाँ तक कि अपने भाइयों को भी दाँव पर लगाकर हार गये। इसके अनन्तर उन्होंने कहा --

अब हम लक्ष्मी के समान गुणोंवाली द्रौपदी को दाँव पर रखते हैं।

किन्तु भाग्य फिर भी उनके अनुकूल न हुआ; वे द्रौपदी को भी हार गये। अन्त में उन्होंने अपने को भी दाँव पर रक्खा। पर इस बार भी शकुनि ही की जीत हुई।

दुर्योधन, उनके साथी और उनके भाई, युधिष्ठिर को हारते हुए देखकर मर्म्मभेदी वाक्यों से उन्हें व्यथित करने लगे।

बदला लेने की आग दुर्योधन के हृदय में भड़क ही रही थी। उसने दुःशासन को आज्ञा दी कि द्रौपदी को सभा में इसी समय मेरे सामने लाओ।

दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन रोती हुई द्रौपदी के बाल पकड़कर सभा में खींच लाया। जिस द्रौपदी के बाल, कुछ ही दिन पहले, यज्ञान्त में पवित्र जल से सिञ्चित हुए थे वही आज इस तरह अपमानित हुई। द्रौपदी ने इन्द्रप्रस्थ में दुर्योधन की हँसी की थी, उसी अपमान का इस प्रकार भीषण प्रतिशोध लिया गया। दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन उसकी सारी खींचने लगा।

सभा में उपस्थित लोगों को इस अत्याचार से बड़ा दुःख हुआ पर किसी का भी साहस न हुआ कि वह दुर्योधन के इस कार्य्य का प्रतिवाद करता। लेकिन धर्म्म ने द्रौपदी की लाज रख ली। वह विवस्त्र न होने पाई।

भीमसेन इस अपमान से जल उठे। वे आपे से बाहर हो गये। उन्होंने दुःशासन का ख़ून पीने और दुर्योधन की जाँघ तोड़ने का प्रण किया।

जिस समय सभा में इस प्रकार का अनर्थ हो रहा था, गान्धारी अन्तःपुर में थीं। वहाँ पर उन्होंने ये सब बातें सुनीं। उन्होंने यह भी सुना कि अन्तःपुर से दुःशासन द्रौपदी को एक-वस्त्रावस्था में ही बाल खींचते हुए बाहर ले गया है। एक गृह-देवी पर इस तरह का अत्याचार देखकर गान्धारी का हृदय पिघल उठा। करुणा और शोक के मारे उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उन्होंने उस समय यही कहा—

जहाँ पर स्त्रियों पर इस तरह का अत्याचार हो वहाँ पर अधिक कल्याण की आशा नहीं। जान पड़ता है, अब शीघ्र ही कोई अनिष्ट होनेवाला है।

फिर वे अत्यन्त व्याकुल होकर धृतराष्ट्र के पास दौड़ी गईं और एक एक करके अन्याय की सब बातें उन्होंने कह सुनाईं। उन्होंने यह भी कहा—

पिता का धर्म्म है कि कुराह चलते पुत्र को सदा रोके। दुर्योधन आपकी आज्ञा माने या न माने पर आपको यही उचित है कि आप उसे इस अधर्म्म से रोकें और मना करें।

धृतराष्ट्र गान्धारी की विद्वत्ता और धर्म्म-परायणता की बात जानते थे। उन्होंने दुर्योधन का बड़ा तिरस्कार किया और द्रौपदी को बुलाकर उसे धीरज देते हुए बोले—

हे भद्रे! तुम हमारी बहुओं में सबसे बड़ी हो, जो कुछ हो गया उसमें किसी का बस नहीं, पर अब तुम जो कुछ कहो हम वही करें।

द्रौपदी ने कहा—यदि आप इतने प्रसन्न हैं तो मेरे पतियों को दासत्व से मुक्त कर दीजिए।

धृतराष्ट्र ने इसे स्वीकार कर लिया और युधिष्ठिर को बुलाकर कहा—हे पुत्र! अपनी हारी हुई सब सम्पत्ति लेकर तुम सुखपूर्वक राज्य करो। तुमसे इस समय हमारा यही आग्रह है कि तुम धर्म्मशील हो ढिठाई के लिए दुर्योधन को क्षमा कर दो।

युधिष्ठिर बड़े क्षमा-शील थे। उन्होंने यह भी मान लिया और कहा—आप हमारे पूज्य और पिता के समान हैं। आप जो कुछ आज्ञा दें, हमें शिरोधार्य्य है।

यह कहकर वे गान्धारी को प्रणाम करने के लिए अन्तः-पुर में गये। युधिष्ठिर से यह छिपा न रहा कि गान्धारी ही की धर्म्म-परायणता और उदारता से वे इस समय दासत्व से छूटे हैं। गान्धारी ने उन्हें आशीर्वाद देकर कहा—पुत्र, तुम्हारा प्रताप सदा अचल रहे। तुम अजात-शत्रु हो, तुम्हारा कोई वैरी न रहे। दुर्योधन तुम्हारा छोटा भाई है, उसे क्षमा कर दो।

युधिष्ठिर ने कहा—बहुत अच्छा।

यह कहकर वे लौट आये और अपने हारे हुए धन, रत्न, अलङ्कार इत्यादि लेकर अपने राज्य को लौट जाने के लिए तैयारी करने लगे।

---

# बारहवाँ परिच्छेद

दुर्योधन को भी इधर यह ख़बर लगी कि उनकी माता गान्धारी की सलाह से महाराज धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को उनकी हारी हुई सारी सम्पत्ति फेर दो, उन्हें भाइयों समेत मुक्त कर दिया और इन्द्रप्रस्थ जाने की आज्ञा भी दे दो। पराजित और इस भाँति हाथ में आये हुए वैरियों का अनायास ही निकल जाना उसे बहुत बुरा लगा। उसे इस बात पर बड़ा चोभ हुआ। माता और पिता का यह इन्साफ़ उसे पसन्द न आया।

मामा शकुनि और दु:शासन फिर बुलाये गये। फिर सलाह जारी हुई। पाण्डवों को चौपट करने की तदबीरें फिर सोची जाने लगीं। अन्त में यही निश्चय हुआ कि धृतराष्ट्र से इस बात के लिए फिर प्रार्थना की जाय कि वे पाण्डवों को बुलाकर उनके साथ जुआ खेले जाने की फिर आज्ञा दे दें।

इस काम के लिए दुर्योधन, शकुनि और कर्ण इत्यादि बूढ़े महाराज के पास जा पहुँचे और फिर जुआ खेलने की अनुमति माँगी।

दुर्योधन ने कहा—पिता! आपने उनकी हारी हुई सम्पत्ति उन्हें वापस कर दो। इसके लिए हमें कुछ चोभ

नहीं। आपने जो कुछ आज्ञा दे दी वह हमें भी स्वीकार है। पर आप यह सोच लें कि इसका फल अच्छा न होगा। पाण्डव लोग सताये हुए साँप की तरह हमसे ज़रूर बदला लेंगे। इसलिए अब की बार यह दाँव लगाया जाय कि जो हारे वह बारह वर्ष वनवास और एक साल अज्ञातवास करे। हमें विश्वास है कि मामा शकुनि फिर भी जीतेंगे, इससे सब फ़साद थोड़े दिनों के लिए आप से आप शान्त हो जायगा।

धृतराष्ट्र स्वभावतः धर्म-भीरु थे। पाण्डवों से उन्हें स्नेह भी था, पर उनका हृदय कमज़ोर था, इससे उन्होंने जुआ खेलने के लिए युधिष्ठिर के फिर बुलाये जाने की आज्ञा दे दी।

यह सुनकर गान्धारी को मर्मान्तिक पीड़ा हुई। पुत्रों के दुराचारों और निष्ठुर व्यवहारों से उन्हें यों ही व्याकुलता थी, पर जब उन्होंने यह बात सुनी तब उनकी व्याकुलता और भी बढ़ गई। पर साथ ही साथ उनकी धर्म्म-प्रवृत्ति जग उठी, उन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो आया। आगे होनेवाले अनिष्ट ने उन्हें सब कुछ सुझा दिया। उन्होंने अपने स्वामी के इस अनुचित कार्य्य को भला न समझा। उन्होंने महाराज धृतराष्ट्र के पास आकर कहा—

महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं? क्या पुत्रों के स्नेह में आकर आप कुल का नाश करनेवाले हैं? दुर्योधन के पैदा होते ही विदुर आदि सज्जनों ने आपको उसे त्यागने की सम्मति दी थी पर आपने न माना। पहले ही जुआ

खेलने की आपको आज्ञा न देनी थी, पर ख़ैर, जो हो गया सो हो गया। अब दुबारा जुआ खेलने की आज्ञा देना अच्छा नहीं। नियम की बात तो यही है कि पुत्र ही पिता की आज्ञा माने, फिर आप दुर्योधन का अनुरोध क्यों मानते हैं? वह भी पापानुरोध! जिससे कुल का कुल नाश हो जाय! अगर वह दुरात्मा आपका कहना न माने तो उसे निकाल दीजिए। पर बुझी हुई आग को फिर भड़काना ठीक नहीं। धर्म्म-पथ से हट जाना विद्वानों को शोभा नहीं देता। यदि आप इस समय मेरी प्रार्थना न मानेंगे तो आप समझ लें कि इसका फल अच्छा न होगा।

महाराज धृतराष्ट्र अपनी धर्म्म-परायणा रानी की बात सुनकर बोले—प्रिये! यदि वंश-नाश होना ही बदा है तो उसे रोक ही कौन सकता है? विधाता के विधान में किसी का क्या वश? परन्तु हम अपने प्यारे पुत्रों के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते।

गान्धारी ने अपने प्यारे पति की इस तरह की बातें सुनकर समझ लिया कि होनहार बुरा है। जब उसने देखा कि अब कुछ उपाय नहीं तब वह ईश्वर पर छोड़कर चुप हो रही।

महाराज युधिष्ठिर फिर बुलाये गये। धृतराष्ट्र की आज्ञा से फिर जुआ आरम्भ हुआ। सभा में बैठे हुए लोगों का कलेजा धक-धक करने लगा। अनिष्ट की सम्भावना से सबके हृदय काँप उठे।

इस बार शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज! अब की दाँव इस तरह तय हो कि यदि हम लोग आपसे हार जायँ तो मृगचर्म्म पहनकर बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करें। और यदि दैव-संयोग से हम जीतें तो आप लोग द्रौपदी के साथ उसी तरह तेरह वर्ष वन में बितावें। तेरह वर्ष बीतने पर फिर आपका राज्य वापस मिले। आइए, खेलें।

युधिष्ठिर बेचारे बड़े असमञ्जस में पड़े। एक ओर वे जानते थे कि जुआ खेलने में शकुनि से जीतने की सम्भावना नहीं; दूसरी ओर लोक-लज्जा उन्हें दबाये देती थी। फल यही हुआ कि लोक-लज्जा की जीत हुई। युधिष्ठिर इसी भाँति दाँव लगाने पर राज़ी हो गये।

पाँसे फेंके गये और फिर भी शकुनि ही का दाँव रहा, दुर्योधन की जीत हुई। युधिष्ठिर हारे। वे वनवास जाने की प्रतिज्ञा के पाश में बँध गये।

भाइयों ने राजा युधिष्ठिर की आज्ञा में चूँ तक नहीं की। वे उनके साथ दीनभाव से मृग-चर्म्म पहनकर वन जाने को तैयार हो गये।

पति-प्राणा द्रौपदी भी उन्हीं के साथ वन जाने को तैयार हुई। वह दुःखित मन से कुन्ती के पास गई, और उसने अपने पतियों के साथ वन जाने की आज्ञा माँगी।

माता कुन्ती उस समय शोक से विह्वल हो गई। उसने कहा—बेटी! इस घोर दुःख में व्याकुल न होना। तुम

खुद ही समझदार हो, तुम्हें हम क्या समझावें। जाओ! अपने पतियों के साथ तुम बे-खटके जाओ। तुम्हारा कल्याण हो।

विदुर की सलाह से महाराज युधिष्ठिर ने माता कुन्ती को उनके घर में छोड़ दिया और द्रौपदी को साथ लेकर भाइयों के समेत वे वन को जाने लगे।

उन्हें इस तरह दीन-भाव से वन जाते हुए देखकर दुःशासन इत्यादि मर्म भेदी वाक्य कहने लगे। दुःशासन ने ताने से द्रौपदी से कहा—

हे द्रौपदी! तुमको तो इन्द्रप्रस्थ का नया महल बहुत प्यारा है, वह तुम्हारे ही योग्य बना है। उसे छोड़कर तुम कहाँ जाओगी। हममें से तुम किसी को अपना पति बना लो, जो तुम्हें कभी जुए में भी न हारे और तुम्हारे साथ उसी महल में रहे।

बदला लेने की आग बड़ी बुरी होती है। बदला लेने ही की जलन से दुःशासन ने ये वाक्य कहे थे। द्रौपदी ने इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ के अवसर पर कौरवों की जो हँसी की थी उसी का यह बदला था।

पर भीमसेन को इन लोगों की इस प्रकार की बातें बड़ी बुरी लगीं। वे बड़े अभिमानी थे। उन्होंने कहा—तुम लोगों की बातों का इस समय उत्तर देना वृथा है तुम जो चाहो, कहो। पर याद रक्खो कि वन से लौटने पर तुम्हारी

हम ऐसी दुर्गति करेंगे कि तुम भी याद करोगे। लड़ाई के मैदान में हम धृतराष्ट्र के पुत्रों को, अर्जुन कर्ण को, और सहदेव शकुनि को मारेंगे।

अर्जुन ने कहा—हे भीम! इस समय अधिक कहना व्यर्थ है, तेरह वर्ष के बाद हम लोग जो कुछ करेंगे वह सबकी आँखों के सामने होगा। इस समय आओ चलें।

जब पाण्डव लोग चलने लगे, उनकी माता कुन्ती ने बड़ा विलाप किया। पर पाण्डवों ने उन्हें धैर्य्य दिया और वे उनके पैर छूकर चल दिये।

धृतराष्ट्र मन ही मन चिन्ता करते हुए राज-सभा में बैठे रहे। पर अधर्म्म के कारण उनका कलेजा बराबर काँपता रहा, मानो आगे होनेवाला अमङ्गल साक्षात् मूर्ति धारण करके उनके सामने खड़ा हो और कह रहा हो कि ये ही भीमसेन, जिनका इस तरह अपमान किया गया है, अपने क्रोध की आग तुम्हारे पुत्रों के ख़ून से बुझायेंगे।

पतिव्रता गान्धारी की क्या बात लिखी जाय। उसकी कौन सुनता था? वह होनहार पर विश्वास करके चुप बैठी हुई ईश्वर का नाम लेकर कौरवों और पाण्डवों (दोनों) की मङ्गल-कामना करती रही।

धन्य देवि! धन्य! तुम्हारे हृदय की उदारता और तुम्हारी न्यायपरायणता दोनों ही स्तुत्य हैं। तुमने सचमुच ही मातृ-धर्म्म-पालन की हद कर दी। सच है, कुपुत्रों ही

का पैदा होना सम्भव है—इस पृथ्वी पर कुमाताएँ जन्म नहीं लेतीं। माता के हृदय में उद्दण्ड से उद्दण्ड पुत्र के लिए भी स्थान रहता है, वह उससे भी प्रेम करती है। इसी पुत्र-स्नेह के वश होकर तुमने भी अपने उद्दण्ड पुत्रों की प्रीति नहीं छोड़ी; तुमने उनके कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। पर तुम्हारे पुत्र जिन्हें सदा ही अपना शत्रु मानते रहे, उन्हीं कुन्ती और माद्री के पुत्रों पर से भी तुमने स्नेह नहीं हटाया। तुमने उनके भी कल्याण की कामना की। अपने पुत्रों का दोष जानकर निरपराधी पाण्डवों की कल्याणमयी चिन्ता करके तुमने अपने नाम और यश दोनों को अमर कर दिया। दुराचारी दुर्योधन जो अपने जीते जी इतने सुख और ऐश्वर्य्य का मालिक बना रहा, वह तुम्हारे ही पुण्य के प्रभाव से, और तुम्हारी ही इस कल्याणमयी चिन्ता की बदौलत। देवि गान्धारी ! यदि तुम्हारे धर्म्म में बल न होता, यदि तुम्हारा पुण्य इतना ज़बरदस्त न होता तो तुम्हारे उन दुराचारी पुत्रों की न जाने क्या दशा होती ? वे सताये हुए लोगों की आहों से जल जाते और बड़े लोगों के अपमान के फल से वे कभी चैन न पाते। पर तुम्हारी ही कल्याणमयी चिन्ता ने बहुत दिनों तक उनका बाल भी बाँका न होने दिया।

सच तो यों है कि उन्हें जो कुछ भी सुख और ऐश्वर्य्य मिला वह तुम सरीखी माता के पुत्र होने के कारण, और तुम्हारे पुण्य-कर्म्मों की बदौलत; और उन्हें जो कुछ भी दुःख

और शोक हुआ वह उन्हीं के घोर अत्याचारों और बुरे कामों के फल से। देवि! तुम्हारी ही जैसी उच्च हृदयवाली माताओं से देश और समाज का कल्याण हो सकता है। प्रगाढ़ पुत्रस्नेह के होते हुए भी पुत्रों की इच्छा के अनुसार तुमसे अधर्म्म नहीं हुआ। तुम सदा ही धर्म-परायणा बनी रहीं। पुत्रों पर बहुत प्रेम करके भी तुमने उनकी अन्याय-भरी बातों का अनुमोदन नहीं किया। इसी से तो आज तुम्हारा चरित्र आदर्श माना जाता है।

---

# तेरहवाँ परिच्छेद

पाण्डवों के वन चले जाने पर गान्धारी को बड़ा दुःख हुआ पर वह बेचारी करती ही क्या? जब महाराज धृतराष्ट्र पर उसके कहने का कुछ भी असर न हुआ तो वह चुप हो रही। फिर भी आगे होनेवाले अमङ्गल को सोचकर उसका हृदय काँप उठा। जब प्राणियों को अधिक दुःख होता है तब बहुधा वे ईश्वरेच्छा पर विश्वास करके बैठ जाते हैं। यही विश्वास उनके हृदय से दुःख को दबा देता है। इसी से पतिव्रता गान्धारी ने भी इसी विश्वास का सहारा लिया।

पाण्डवों पर दुर्योधन की ईर्ष्या का अब भी अन्त न हुआ। वह उनको वनवासी बनाकर भी सन्तुष्ट न हुआ। अभिमानिनी द्रौपदी ने उसकी जो हँसी की थी उसका भीषण प्रतिशोध लेने पर भी वह शान्त न हुआ। उन लोगों के वन में रहते रहते भी दुर्योधन ने उन्हें पीड़ित करने की ठानी। पर पाण्डव लोग अपनी प्रतिज्ञा के पालन करने पर दृढ़ रहे। वे दुर्योधन के अत्याचारों को सहते रहे। युधिष्ठिर बड़े धर्म्म-भीरु थे। अधर्म्म और असत्य से वे बहुत डरते थे। शेष चारों भाई उनके आज्ञाकारी थे। इसी से सभी सत्य पर दृढ़ रहे। जङ्गल में पाण्डवों को असहनीय दुःख भोगने पड़े। यहाँ तक कि अज्ञात-वास के लिए रूप बदल-

कर उन्हें राजा विराट् के यहाँ सेवक बनकर रहना पड़ा। जिनके सैकड़ों नौकर लगे रहते थे उन्होंने दूसरे की नौकरी की। जिस अभिमानिनी द्रौपदी का पैर ज़मीन पर न पड़ता था वही राजा विराट् के अन्तःपुर की दासी बनी। पर क्या? वे इन दुःखों को सहकर भी प्रतिज्ञा से नहीं टले। बारह वर्ष वनवास करके उन्होंने एक वर्ष अज्ञातवास किया।

कालचक्र फिरा ही करता है। सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख की बारी आती ही है। परमात्मा का यह अविचल नियम है। दुनिया पलट जाने पर भी यह नियम नहीं पलटता। जुए की बदौलत पाण्डव लोग राज्य-पद से इस दशा को पहुँचे कि वे दूसरे के सेवक बने—उन्हें मुँह छिपाकर रहना पड़ा, वेष बदलकर दूसरे का दासत्व करना पड़ा। पर वह समय भी बीत गया। उनकी प्रतिज्ञा भी पूरी हो गई। इसके अनन्तर वे न्यायपूर्वक अपना हारा हुआ राज्य पाने के अधिकारी हुए।

उचित समय आने पर उन्होंने राजा विराट् को अपना सच्चा परिचय दे दिया। उन्होंने अपनी बीती सब कह सुनाई। इसके पश्चात् राजा विराट् की सहायता से उन्होंने अपने सम्बन्धियों और इष्ट-मित्रों को विराट्-नगर में बुला भेजा।

द्रौपदी के पिता राजा द्रुपद, उसके भाई महाबली धृष्ट-द्युम्न, यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण, बलदेव, सात्यकि इत्यादि

वीर इस संवाद को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। अपने अपने और सब काम छोड़कर वे पाण्डवों से मिलने के लिए विराट्-नगर आये।

पाण्डवों से मिलकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। कृष्ण ने कहा—हे नृपतिगण! राजा युधिष्ठिर का जुए में हार जाना और वनवास करना आपसे छिपा नहीं है। पर जो हो गया सो हो गया। अब आप लोग कौरवों की लोभ-लिप्सा और पाण्डवों के धर्म्म-पालन का ख़याल करके विचार कीजिए कि इस समय इन लोगों को क्या करना चाहिए। आप लोग बुद्धिमान् और नीतिपरायण हैं, इससे कोई ऐसी तरकीब सोचिए कि जिसमें कौरव और पाण्डव दोनों की भलाई हो और पाण्डवों का राज्य भी मिल जाय।

महात्मा बलदेव कृष्ण की युक्ति-पूर्ण बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा- कृष्ण का कहना बहुत ठीक है। पर हमारी राय में तो युधिष्ठिर ही की भूल से उनका राज्य गया। जुआ के खेल में प्रवीण न होने पर भी उन्होंने जुआ खेला, इसी से वे सब कुछ हार गये। दुर्योधन का इसमें कुछ अधिक दोष नहीं। पर युधिष्ठिर ने सचमुच ही प्रतिज्ञा-पालन करके—वनवास और अज्ञात-वास करके—तेरह वर्ष बिताये हैं। अब वे अपना राज्य वापस पाने के अधिकारी हैं।

अन्त में यह निश्चित हुआ कि राजा द्रुपद की ओर से एक होशियार दूत दुर्योधन के पास जाय और पाण्डवों की

ओर से उनके राज्य के लिए बातचीत करें। यह तय हो जाने पर सब लोग अपने अपने घर लौट गये।

इसके अनन्तर राजा द्रुपद ने अपने पुरोहित को समझा बुझाकर हस्तिनापुर भेजा।

यह सब हो जाने पर भी पाण्डवों की आत्मा ने यही गवाही दी कि दुर्योधन उनका राज्य सीधी तरह न लौटा देगा। उससे एक बार उन्हें अवश्य ही युद्ध करना पड़ेगा। पर पाण्डवों से दुर्योधन की शक्ति भी छिपी न थी। वे जानते थे कि बेजोड़ धनुर्द्धर भीष्म से इस संसार में कोई मुक़ाबिला नहीं कर सकता। महापराक्रमी रणकुशल और बाण चलाने में होशियार गुरु द्रोणाचार्य्य भी उन्हीं का साथ देंगे। द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा अकेले ही कई महारथियों का मुक़ाबिला करने की शक्ति रखते हैं। कर्ण का ध्यान आते तो उनकी छाती ही मानो फट जाती थी; जो वीर पैदा ही कुण्डल और कवच लेकर हुआ है उसे कौन जीत सकेगा? जिस पराक्रमी ने वे सब करतब करके दिखला दिये हैं, जिन्हें अर्जुन ने दिखाया था, उसके मुक़ाबिले में कौन खड़ा होगा? महात्मा कृपाचार्य्य की टक्कर कौन लेगा? दुर्योधन और दुःशासन की गदाओं की मार का कौन जवाब देगा! फिर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा, उन्हें रणनीति-कुशल कृष्ण की शक्ति का पूरा विश्वास था। वे जानते थे कि दुस्साध्य और असाध्य कार्य्य को भी पूरा करने की तरकीब कृष्ण को मालूम है। इससे केवल कृष्ण पर भरोसा करके उन्होंने अन्य

राजाओं के पास निमन्त्रण भेजा। अर्जुन स्वयं ही श्रीकृष्ण के पास द्वारका दौड़े गये।

इधर दुर्योधन के जासूस पाण्डवों का पता ही लगा रहे थे। उन्होंने इन बातों की ख़बर दुर्योधन को दी। दुर्योधन ने यह सुनते ही एक तेज़ घोड़े पर सवार होकर द्वारका को प्रस्थान किया और साथ ही साथ अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि सब राजाओं के पास रण-निमन्त्रण भेजा जाय। फल यह हुआ कि अर्जुन और दुर्योधन साथ ही द्वारका पहुँचे। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र सो रहे थे। उनके शयन-गृह में भी स्वार्थवश दोनों चले गये। वहाँ पहुँचकर अर्जुन पलँग के पैताने की ओर बैठे और दुर्योधन सिरहाने की ओर।

ज्योंही श्रीकृष्ण की नींद खुली त्योंही सामने पड़ने के कारण पहले उन्होंने अर्जुन को देखा, फिर दुर्योधन को। दोनों ही ने अपनी अपनी बात कह सुनाई।

कृष्ण बड़े चतुर थे। अर्जुन का पक्ष लेना ही उन्हें प्रिय था। इससे उन्होंने बात बनाकर कहा—हे सुयोधन! हमने अर्जुन को पहले देखा है, पर आप कहते हैं कि आप पहले आये हैं। इससे हमने यह निश्चय किया है कि हम दोनों की सहायता करेंगे। हमारे पास दस करोड़ नारायणी सेना है। एक ओर वह होगी, दूसरी ओर अकेले हम; पर हम न लड़ेंगे और न रणक्षेत्र में हथियार ही उठावेंगे। अर्जुन छोटे हैं, इससे वे पहले इन दो में जो चाहें माँग लें।

अर्जुन ने नम्रता-पूर्वक कहा—हम अकेले श्रीकृष्ण ही का लेंगे।

अब क्या था, बात तय हो गई। दुर्योधन को दस करोड़ नारायणी सेना मिली, इससे वे बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद वे बलदेवजी के पास गये। पर बलदेवजी ने कहा—

हम जानते हैं कि हमारे लिए कौरव और पाण्डव दोनों बराबर हैं। हमें किसी का पक्ष लेना ठीक नहीं। कृष्ण ने पाण्डवों का पक्ष लेकर अच्छा काम नहीं किया, पर हम कृष्ण के विपक्ष में नहीं रहना चाहते। इसलिए हम किसी ओर न होंगे।

इसके बाद और दो एक राजाओं के पास होकर दुर्योधन हस्तिनापुर को लौट पड़े।

इधर राजा द्रुपद का भेजा हुआ दूत भी हस्तिनापुर पहुँचा। उसने पाण्डवों का सब वृत्तान्त निवेदन किया और राजा धृतराष्ट्र से पाण्डवों का राज्य फेर देने की प्रार्थना की।

अन्तःपुर में भी यह ख़बर पहुँची। गान्धारी यह संवाद सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। तेरह वर्ष के बाद अपने ही पुत्रों के समान प्यारे पाण्डवों का शुभ समाचार सुनकर वे पुलकित हो उठीं। उन्होंने महाराज धृतराष्ट्र के पास कहला भेजा कि पाण्डवों को बुलाकर उन्हें उनका राज्य अवश्य लौटा दिया जाय। इस बार भी दुर्योधन का दुराग्रह मान लेने का फल अच्छा न होगा।

राजा धृतराष्ट्र ने गान्धारी के इस प्रस्ताव को सुनकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने अपने सभासदों और मन्त्रियों से भी सलाह ली। भीष्म, द्रोण और विदुर ने तो गान्धारी के प्रस्ताव का अनुमोदन किया पर कर्ण ने उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई।

फिर भी महाराज धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण, विदुर और गान्धारी ही की सलाह ठीक मानी। दुर्योधन उस समय द्वारका गये थे। हस्तिनापुर में वे मौजूद न थे। वे आकर क्या कहेंगे इसकी परवाह न करके महाराज धृतराष्ट्र ने संजय को पाण्डवों के पास यह संदेशा लेकर भेजा कि आपस में सन्धि हो जाना ही अच्छा है। बन्धु-विरोध का फल अच्छा नहीं।

पतिव्रता गान्धारी को महाराज धृतराष्ट्र की इस कार्यवाही से बहुत कुछ सन्तोष हुआ। धन्य देवि! तुमने सदा ही उदारता दिखाई और सदा ही धर्म का पक्ष लिया। तुम्हारी ही ऐसी उदार हृदयवाली देवियाँ सच्ची गृह-देवियाँ कही जा सकती हैं।

संजय के हस्तिनापुर से प्रस्थान करने के पश्चात् महाराज धृतराष्ट्र ने द्रुपद के पुरोहित को उचित धन-धान्य देकर बिदा किया और कहा कि आपकी सन्धि ही के लिए हमने संजय को पाण्डवों के पास भेजा है। राजा द्रुपद से हमारा यथोचित अभिवादन कहकर यही सब हाल कह देना। वे हमारे घर के कलह को मिटाते हैं इसके लिए हम उनके बड़े कृतज्ञ हैं।

---

# चौदहवाँ परिच्छेद

द्वारका से दुर्योधन के चले आने पर अर्जुन भी श्रीकृष्ण को साथ लेकर राजा विराट् के नगर को वापस आये। उसी अवसर पर धृतराष्ट्र के भेजे हुए सञ्जय भी आ पहुँचे।

सञ्जय ने बड़ी चतुरता के साथ युधिष्ठिर से सन्धि के लिए बातचीत की। युधिष्ठिर स्वयं ही आपस के कलह से दूर रहना चाहते थे। उन्होंने कहा—

आप पूज्य चाचा से हमारा प्रणाम निवेदन करना और कहना कि हम सदा ही उनके आज्ञाकारी हैं। आपस में विरोध बढ़ाना हमें अभीष्ट नहीं, यदि हमें पाँच गाँव भी मिल जायँगे तो भी हम सन्धि कर लेंगे। वृथा ही अपने भाइयों का ख़ून बहाना हमें भी भला नहीं जँचता।

सञ्जय ने लौटकर सब बातें धृतराष्ट्र से कहीं। उन्होंने यह भी कहा कि युधिष्ठिर का यह अन्तिम प्रस्ताव स्वीकार ही करने के योग्य है, यदि यह स्वीकार न किया जायगा तो बड़ा अनिष्ट होने की सम्भावना है।

धृतराष्ट्र बड़े दूर-दर्शी थे। उन्होंने दुर्योधन से कहा—पुत्र! पाण्डवों को न्याय-पूर्वक उनका हारा हुआ सब राज्य, कोश मिलना चाहिए पर वे बेचारे पाँच गाँव लेकर ही सन्धि

करने को तैयार हैं इससे उनकी बात मान लेनी चाहिए। आपस के बन्धु-विरोध का फल भला नहीं।

पर दुर्योधन ने बूढ़े पिता की एक न सुनी।

इधर जब बहुत दिन बीत गये और उस संदेशे का, जो महाराज युधिष्ठिर ने संजय के द्वारा भेजा था, कुछ जवाब न गया तो वे चिन्तित हुए। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—

हे महात्मन्! आप हमारे पूज्य हैं। इस समय आप जो कुछ हमें आज्ञा दें हम वही करें। कौरवों के साथ इस समय हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए आप इसे निर्धारित कर दें।

श्रीकृष्ण ने कहा—धर्म्मरूप! आपने सदा ही धर्म्म का पालन किया है। आपने हमसे जो कुछ पूछा है वह उचित ही है। इससे आपके हृदय की उदारता और उच्चता का बहुत कुछ पता लगता है। अच्छा! हम पाण्डवों और कौरवों में सन्धि होने के लिए एक बार स्वयं हस्तिनापुर जाकर अन्तिम चेष्टा करते हैं। यदि दुर्योधन हमारी बात मान गया तब तो अच्छा ही है, नहीं तो फिर युद्ध ही करना पड़ेगा। हम यह जानते हैं कि जहाँ धर्म्म है वहीं जय है, आप अवश्यही सङ्ग्राम करने पर विजयी होंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—प्रभो! आपकी बात क्या कभी मिथ्या हो सकती है। यदि दुरात्मा कौरवों ने आपका कहना न माना तो अवश्य ही उनका नाश होगा।

इस तरह बातचीत होने के पीछे कृष्ण ने हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। दुर्योधन ने उनका आगमन सुनकर दिखावे में उनके स्वागत की बड़ी बड़ी तैयारियाँ कीं। श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर पहुँचने पर भीष्म आदि कौरवों ने उनकी बड़ी अभ्यर्थना की। श्रीकृष्ण बड़े चतुर थे, बातें बनाना उन्हें ख़ूब आता था। उन्होंने सभा में कहा—

भाई दुर्योधन! इस समय तुम जैसा व्यवहार कर रहे हो वह तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम्हारी भूल से जो अनर्थ होने की सम्भावना की जाती है उसे शान्त करने ही में तुम्हारी भलाई है। तुम पाण्डवों से मेल कर लो; उनके साथ मेल करने की ही तुम्हारे गुरुजनों की सलाह है, यहाँ तक कि तुम्हारे बूढ़े पिता और तुम्हारी जगत्पूज्या माता गान्धारी की भी यही इच्छा है कि तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो। भाई भाई गले लगकर मिलें इससे बढ़कर और क्या हो सकता है। इससे यही भला है कि जब पाँच गाँव लेकर ही वे सन्धि कर लेना चाहते हैं तो उन्हें हताश न करो, उनके साथ मेल कर लो, यह तुम भली भाँति समझ लो कि उन्हें युद्ध में हरा देना नितान्त असम्भव है। हमारी यह बात मान लेने से तुम्हारा सर्वथा कल्याण होगा।

श्रीकृष्ण के कहने में सभी ने हाँ में हाँ मिलाई। विदुर, भीष्म और द्रोण सभी ने दुर्योधन को समझाया। पर उसने किसी की न सुनी।

तब स्वयं धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा—

पुत्र! कृष्ण हमारे बड़े आत्मीय और नीतिशास्त्र के पण्डित हैं। इनका कहना मान लो। इनकी बात का आदर करने ही में तुम्हारी भलाई है।

लेकिन पिता के इतना समझाने पर भी दुर्योधन का विचार न बदला; वह अपनी पुरानी ही बात पर दृढ़ रहा।

अन्त में उसने कृष्ण की ओर देखकर कहा—

हे वासुदेव! तुम्हें समझ बूझकर बातचीत करनी चाहिए। हमने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया। फिर तुम पाण्डवों का पक्ष लेकर हमारी हानि क्यों चाहते हो और हमारी निन्दा क्यों करते हो? हम तुम्हारी बातों पर डर जानेवाले नहीं। कुछ भी हो, हम पाण्डवों को उतनी भी ज़मीन न देंगे जितनी सुई की नोक से छिद सकती है।

दुर्योधन ने यह कहकर हद कर दी। श्रीकृष्ण का क्रोध उबल उठा। वे कहने लगे—

हे भरत-कुल के कलङ्क! तुम अपने इस कहने का मज़ा शीघ्र ही चक्खोगे। हमने समझ लिया कि जब तक दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन पकड़कर पाण्डवों के हवाले न कर दिये जायँगे तब तक यह विवाद न मिटेगा और न सन्धि होगी।

यह सुनकर दुर्योधन वहाँ से उठकर चल दिया। पर उसका यह आचरण, और श्रीकृष्ण को इस भाँति क्रोधित देख

कर धृतराष्ट्र का कलेजा काँप उठा। वे व्याकुल हो उठे। उन्होंने विदुर से कहा—

वत्स ! श्रीकृष्ण की बात न मानने से दुर्योधन का अवश्य ही अमङ्गल होगा। इससे तुम इस समय उसकी माता के पास जाओ। गान्धारी बड़ी दूरन्देश हैं, उन्हें तुम यहाँ बुला लाओ। शायद माता के समझाने से दुर्योधन की बुद्धि ठिकाने आ जाय और यह कौरव-वंश नाश होने से बच जाय।

विदुर महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा मानकर अन्तःपुर में गये और उन्होंने गान्धारी देवी से सब हाल कहा।

दुर्योधन का कृत्य और पाण्डवों के साथ उसका व्यवहार देखकर गान्धारी को यों ही दुःख था। पर जब उन्होंने सुना कि दुर्वृत्त दुर्योधन श्रीकृष्ण की बात का भी अनादर करने पर तैयार है, तब उन्हें यह समझना शेष न रहा कि कौरव-कुल का अन्त भी अब निकट ही है। उन्होंने विदुर से कहा—

"वत्स ! तुम्हारे कहने से और पतिदेव की आज्ञा से मैं दुर्योधन को समझाने की चेष्टा अवश्य करूँगी, पर वह समझ जाय और उसकी बुद्धि ठिकाने आ जाय इसकी आशा करना उसी तरह बेकार है जैसे बबूल के वृक्ष में ख़ूब रसभरे आमों के फलने की आशा करना। जिसने सर्वशक्तिमान् यादव-कुल-तिलक श्रीकृष्ण का कहना नहीं माना, उस पर एक अबला के कहने का प्रभाव ही क्या पड़ सकता है ?"

यह कहकर वे अन्तःपुर से सभाभवन में आईं। वहाँ पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्णजी उन्हें प्रणाम कर रहे हैं। उन्होंने कहा—

वत्स श्रीकृष्ण ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम कौरव-वंश के कल्याण के लिए जो प्रयत्न कर रहे हो, वह सर्वथा प्रशंसा के योग्य है। तुम्हें ऐसा ही यत्न करना चाहिए जिससे चन्द्र-वंशियों की पताका इस पुरी में फहराती ही रहे।

श्रीकृष्ण ने चतुरता-भरे वचनों में कहा—

देवि ! तुम्हारी वाणी सफल हो मेरी भी यही इच्छा है कि हस्तिनापुर में चन्द्रवंशियों के प्रकृत अधिकारियों का ही राज्य रहे। ( कृष्ण के इस कहने का यही आशय था कि इस राज्य के प्रकृत अधिकारी तो राजा युधिष्ठिर हैं और उन्हें राज्य दिलाना ही हमारा अभीष्ट है। )

गान्धारी ने फिर कहा—

श्रीकृष्ण ! तुम्हारी शक्ति मैं जानती हूँ, तुम्हारी नीति भी मुझ पर अविदित नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि तुम चेष्टा करोगे तो अवश्य ही दोनों पक्षों में सन्धि हो जायगी।

श्रीकृष्ण ने फिर चतुराई की चाल चली; उन्होंने कहा—

देवि ! तुम्हारा कहना सच है। पर मैं भी इस समय सच ही कहता हूँ कि मैंने सन्धि की चेष्टा ही से यहाँ आकर दुर्योधन को समझाने का भार लिया था; पर जब दुर्योधन को मेरा कहना किसी भाँति भी स्वीकार नहीं, तो मुझे उस हठी

को बार बार समझाना भी मञ्जूर नहीं। अब देवि! तुम्हीं उसे समझाने की चेष्टा करना।

यह कहकर श्रीकृष्ण तो चुप हो गये। पर धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण की बात का समर्थन करते हुए गान्धारी से कहा—

हे सुबल-राजपुत्री! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन बड़ा ही दुःशील है। वह बड़ों का सम्मान करना नहीं जानता। उस मूर्ख की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, उसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहा। अभी अभी श्रीकृष्ण के उपदेश-भरे वाक्यों को भी उसने विष ही के समान समझा, और श्रीकृष्ण सरीखे नीतिज्ञ को भी उसने अनादर की दृष्टि से देखा। तुम जानती हो, इसका क्या फल होगा, और तुम्हारे पुत्र के भाग्य में क्या बदा है? वह अशिष्ट शिष्टाचार के नियमों को तोड़कर, मेरे और मेरे भी पूज्य भीष्म के होते हुए भी सभा से चला गया है।

गान्धारी ने कहा—जानती हूँ महाराज! भली भाँति जानती हूँ कि अब शायद कुरु-कुल का संहार होनेवाला है। पर पतिदेव! आप मुझे क्षमा करें, मेरी समझ में तो यह सब आप ही के हृदय की कमज़ोरी का फल है। जब आप जानते हैं कि दुर्योधन पापी और अशिष्ट है तो उसे समुचित दण्ड क्यों नहीं देते और क्यों बराबर उसका कहना मानते जाते हैं?

धृतराष्ट्र ने कहा—क्या तुम यह नहीं जानती हो कि दुर्योधन को दण्ड देना मेरी शक्ति के बाहर है?

गान्धारी ने फिर कहा—हाँ जानती हूँ कि अब इस समय उसे ज़बरदस्ती रोकना आपकी शक्ति से परे है, पर यह भी जानती हूँ कि आपका अनुचित पुत्रस्नेह इसका कारण है। वही अनुचित स्नेह तो आज उसी पुत्र का अनिष्टकारी हो रहा है। पिता को और माता को सदा यही उचित है कि वह सन्तान को उद्दण्ड न होने दें। क्या आपने कभी भी ऐसा यत्न किया है?

गान्धारी के इन वाक्यों में बल था। महाराज धृतराष्ट्र सचमुच ही अनुचित पुत्रस्नेह करने के दोषी थे, इससे उन्हें चुप रहना ही उचित समझ पड़ा।

इसके बाद माता की आज्ञा से दुर्योधन फिर आकर उपस्थित हुए। गान्धारी ने उनसे कहा—

बेटा! इस समय हम तुम्हारी निन्दा करें या तुम्हारे होनहार की; अथवा हम अपनी ही निन्दा करें जिनसे तुम्हारे ऊपर समुचित शासन करने में त्रुटि हुई है। तुम्हारी पापवृत्ति जानकर भी तुम्हारे पिता ने तुम्हें जो राज्य-भार दिया है यह सचमुच ही एक ऐसा पाप हुआ है कि उसका प्रायश्चित्त बड़ा ही कठिन है। तुम क्रोध और लोभ के पञ्जे में इस तरह जकड़ गये हो कि उससे तुम्हारी रक्षा करने में तुम्हारे पिता का कोई वश नहीं चलता। यदि उनका कुछ भी वश चले तो वे प्राण-पण से तुम्हारा उद्धार करने के लिए तैयार हो जायँ। और तुम जानते ही हो कि यदि जीवन-दान देकर भी मैं

तुम्हारा कल्याण कर सकूँ, तो भी मेरा पैर पीछे न पड़ेगा। पर मैं निश्चय-पूर्वक तुमसे कहती हूँ कि तुम पर जो विपत्ति आनेवाली है, तुम्हें जिस दुःख का सामना करना है उससे तुम्हारी रक्षा करना मेरी और तुम्हारे पिता की शक्ति के बाहर है। इस समय तुम स्वयं ही अपनी रक्षा करना चाहो तो कर सकते हो; अन्यथा कहीं भी निस्तार नहीं।

पुत्र दुर्योधन! मैं तुम्हारे कल्याण के लिए जो बातें तुमसे कहती हूँ, उनकी उपेक्षा न करना, उन्हें ध्यान देकर सुनना और उन्हीं के अनुसार काम करना। ऐसा करने से निस्सन्देह तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारे पिता, तुम्हारे पितामह भीष्म, तुम्हारे गुरु द्रोण और तुम्हारी कल्याणकामना करनेवाले भाई श्रीकृष्ण ने तुमसे सन्धि कर लेने के लिए जो बात कही है वह धर्म्म-सङ्गत है। यदि तुम धर्म्म-सङ्गत कार्य्य करोगे तो हम सबको बड़ा ही सुख होगा। और तुम भी सुखी रहोगे।

वत्स! तुम्हीं सोचो कि यदि तुम धर्म्म-सङ्गत काम नहीं कर सकते और अपनी अधर्म्म-बुद्धि को भी नहीं जीत सकते, तो धर्म्म-युद्ध में धर्म्म-राज्य जीतने की क्योंकर आशा कर सकते हो? बेटा! श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत होकर तुम्हारे पास सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये हैं। इन्हें तुम पञ्चभूतों का पुतला ही न समझो, ये बड़े नीतिज्ञ हैं, आज के दिन भारतवर्ष में इनके बराबर कोई नीतिज्ञ नहीं; ये ईश्वरीय शक्ति लेकर इस संसार में विराजमान हैं, इससे तुम इनका कहना मानो;

इनकी बात मान लेने ही में तुम्हारा कल्याण होगा। मैं तुम्हारी माता होकर तुमसे कहती हूँ कि कृष्ण कपट-रहित हैं, इनका हृदय स्वच्छ और छल-विहीन है। ये समदर्शी हैं, इनकी जितनी प्रीति पाण्डवों पर है उतनी ही तुम पर भी है; इसी से ये तुम्हें समझाने आये हैं। धर्म्म इन्हें बहुत प्यारा है, इसी से ये चाहते हैं कि तुम भी धर्म्म-पथ ही पर दृढ़ रहो। इनके प्रसन्न रहने से ही तुम्हारा दोनों का कल्याण होगा। बेटा ! सोचो तो, पाण्डवों को तुम्हारे कारण कितना कष्ट हुआ है। भीमसेन के बुरे व्यवहार का बदला अब पूरा हो चुका। तुम कहते थे कि द्रौपदी ने तुम्हें ताने मारे थे; सो वह भी अब उसका बदला पा चुकी। अर्जुन और युधिष्ठिर से तो तुम्हें कोई शिकायत ही न थी। माद्री के पुत्र तो तुम्हें सदा ही बड़ा भाई समझते रहे हैं। इससे उदारतापूर्वक पाण्डवों को उनके माँगे हुए पाँच गाँव दे डालो। उनकी सामान्य बात क्यों टालते हो। तुम्हें हठी होना ठीक नहीं, तुम्हें नीतिपूर्वक पाण्डवों की योगता स्वीकार करनी चाहिए। तुमने मूढ़ता के वश शायद स्थिर कर लिया होगा कि भीष्म, द्रोण इत्यादि वीर-गण तुम्हारे लिए प्राण-पण से युद्ध करेंगे, लेकिन मैं कहती हूँ कि यह तुम्हारी भूल है और निरी भूल है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। क्योंकि सब लोग जानते हैं कि इस राज्य पर तुम्हारा और पाण्डवों का बराबर अधि-कार है इसी लिए सब वीरगण तुम पर और पाण्डवों पर

बराबर प्रीति करते हैं। वीरों को यह भी विश्वास है कि पाण्डव लोग तुम्हारी अपेक्षा अधिक धर्म्म-शील हैं; इसी से तुम्हारे अन्न-द्वारा प्रतिपालित होने के कारण चाहे समर-क्षेत्र में वे जीवन भले हो विसर्ज्जन कर दें पर धर्म्म-शील युधिष्ठिर पर हथियार न उठायेंगे। पुत्र! यही नहीं, एक बात और भी सोचने के योग्य है कि उनके पिता पाण्डु ने तुम्हारे पिता के साथ कैसा प्रशंसनीय व्यवहार किया है। फिर तुम्हीं ने कहा था कि तेरह वर्ष वनवास और अज्ञातवास करके लौटने के बाद उनका राज्य वापस दिया जायगा। अपने कहे हुए वाक्यों के पालन करने पर भी तुम्हें विशेष ध्यान रखना चाहिए। तुम शायद सोचते होगे कि उन्हें जीत लेना बड़ा आसान काम है, पर यह न समझो। जिस ओर श्रीकृष्ण रहेंगे उस पक्ष से संसार भर में कोई भी बाज़ी नहीं ले जा सकता। इससे हे पुत्र! लोभ को छोड़ दो, लोभी आदमियों को स्वप्न में भी सुख नसीब नहीं होता। मेरी ख़ास इच्छा और मेरा अन्तिम उपदेश है कि तुम पाण्डवों से मेल कर लो।

देवी गान्धारी इस भाँति उपदेश देकर चुप हो रहीं; पर जिस तरह पत्थर में बीज अंकुरित नहीं होता उसी तरह दुर्योधन के कठोर हृदय में माता के उपदेश-भरे वाक्यों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उसने माता की बातें एक कान से सुन लीं और दूसरे से बाहर निकाल दीं। इतना ही नहीं, वह माता की बातों का कुछ भी जवाब न देकर वहाँ से उठकर चल दिया।

यह सब दशा देखकर श्रीकृष्ण कहने लगे—

महाराज धृतराष्ट्र! और यशस्विनी गान्धारी! हमें अब सारी व्यवस्था मालूम हो गई। हमने समझ लिया कि आप स्वाधीन नहीं और दुर्योधन को मेल करना स्वीकार नहीं। यही हाल हम युधिष्ठिर से जाकर कह देंगे और यह भी जता देंगे कि युद्ध अवश्यम्भावी है। अब हम आपको प्रणाम करते हैं। लीजिए, हम चले।

यह कहकर श्रीकृष्णचन्द्रजी बाहर निकल आये और चलते चलते उन्होंने कर्ण से यह कहकर कि तुम कुन्ती के पुत्र हो उसे पाण्डवों के पक्ष में तोड़ना चाहा। पर जब उन्होंने देखा कि मनस्वी कर्ण के प्रशस्त हृदय पर प्रलोभनों का प्रभाव पड़ना असम्भव है तब यह कहते हुए रथ बढ़ा दिया कि "कर्ण! हमारा तो यही अभिप्राय था कि यदि तुम दुर्योधन का साथ छोड़ देते तो शायद सन्धि हो जाती। पर जब तुम दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सकते तो सन्धि भी नहीं हो सकती। इससे तुम सबसे जाकर कह देना कि अब युद्ध के लिए रसद जमा करें और लड़ने के लिए तैयार हो जायँ। युद्ध का मैदान ही अब सारे झगड़ों को मिटा देगा।"

---

## पन्द्रहवाँ परिच्छेद

कुरुक्षेत्र के मैदान में सात ही दिन के बाद बाणवर्षा होने लगी। परस्पर बन्धुओं मे तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध के लिए दोनों दल पहले ही से तैयार थे। इसी से समर के श्रीगणेश होने में देर न लगी। भाई से भाई, गुरु से शिष्य, मित्र से मित्र और बूढ़े से बालक भिड़ गये। उनके बीच में अब पुराना भाव शेष न रहा; एक पक्षवाले लोगों को दूसरे पक्षवालों ने शत्रु ही की दृष्टि से देखा और उन लोगों ने प्रतिज्ञा की कि अपने पक्ष की जय के लिए प्राण तक न्योछावर कर देंगे। भीष्म, द्रोण, शल्य, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, जयद्रथ इत्यादि धनुर्धर दुर्योधन की ओर से लड़ने को तैयार हो गये। दूसरी ओर भी सात्यकि, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, विराट् इत्यादि अगणित धनुर्धर रण का साज साजने लगे। कौरवों की ओर से प्रधान सेनापति के पद पर महात्मा देवव्रत भीष्म निर्वाचित हुए, और पाण्डवों की सेना के प्रधान सेनानी धृष्टद्युम्न बने।

जिस भाँति रणक्षेत्र को जाने के पहले महात्मा युधिष्ठिर ने अपनी माता कुन्ती देवी से बिदा माँगी और उन्होंने कहा कि जाओ पुत्र! तुम्हारी जीत हो, उसी भाँति समर-साज साजे हुए दुर्योधन ने भी समर-क्षेत्र जाने के पहले माता को प्रणाम किया और उनसे बिदा माँगी।

गान्धारी ने कहा—पुत्र ! ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें। जहाँ धर्म्म है, वहीं जय है। जाओ रण-क्षेत्र में वीर-धर्म्म का पालन करना।

दावानल जिस भाँति जङ्गल को जलाने में अग्रसर होता है उसी भाँति समर भी वीरों का संहार करने में हाथ बढ़ाने लगा। महायुद्ध की अग्नि में कौरव और पाण्डव दोनों दलों के वीर स्वाहा होने लगे। दोनों ओर शोक और हर्ष की धारा प्रबल प्रवाह से बहने लगी। न जाने कितने सुकुमार शिशु, कितने नौजवान और कितने सफ़ेद बालोंवाले बूढ़े उस आग में जल मरे और उस धारा में बह गये। दोनों ओर के अन्तःपुर पुत्रहीना माताओं और पतिहीना रमणियों के करुण-क्रन्दन से गूँज उठे।

भीष्म, द्रोण, कर्ण, इत्यादि वीरों का निहत होना भी दूतों के द्वारा महाराज धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी के कानों तक पहुँचा। वह नित्य प्रति सुनने लगीं कि "आज आपका नौजवान पोता रण में मारा गया", "आज आपके बलशाली अमुक पुत्र ने इस नश्वर संसार से बिदा ली", "आज आपके दामाद जयद्रथ को अर्जुन ने मार डाला" इत्यादि इत्यादि। पर क्या, ईश्वरेच्छा से उन्हें सब सहन करना पड़ा। उसे सहन करने के लिए वे पहले ही से तैयार थीं। इसी लिए उन्होंने अपना हृदय मज़बूत कर लिया था—पर मातृ-स्नेह बड़ा कठिन है, पुत्र पर माता की ममता के आगे धर्म्म और सहिष्णुता सभी को नीचा देखना

पड़ता है। माता अपने कुचाली और पापी पुत्रों के लिए भी ईश्वर से यही प्रार्थना करती है कि उनका कल्याण हो और किसी ---म में उनका पैर पीछे न पड़े। यही हाल पति-सेवा-परायणा गान्धारी का था, उन्होंने भी अपने पुत्रों की कल्याण-कामना की और उनके मङ्गल के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। पर पवित्रतामयी देवी ने स्वप्न में भी इस इच्छा को स्थान नहीं दिया कि उनके पुत्रों के कल्याण होने के लिए विपक्षी पाण्डवों का नाश हो जाय। स्वार्थ के लिए संसार-क्षेत्र में विचरण करनेवाले प्राणियों का चित्त विचलित हो जाता है। और वे अपने विपक्षियों के विनाश की कामना करते हैं। शास्त्रकारों का कथन है कि अपने स्वार्थ के लिए भी किसी के अकल्याण के हेतु चिन्ता करना अच्छा नहीं। उदार और ऊँचे हृदयवाले प्राणी अपने कल्याण के लिए दयामय ईश्वर से अवश्य विनय करते हैं, पर किसी के अशुभ की कामना को वे पाप से भी अधिक समझते हैं। इसी से कहना पड़ता है कि देवि! गान्धारी! तुम धन्य हो! तुमने अपने पुत्रों की कल्याण-कामना करके जिस भाँति एक सच्ची माता का आदर्श दिखाया है, उसी भाँति कुन्ती के पुत्रों के अनिष्ट की कामना से दूर रहकर तुमने एक आदर्श रमणी का आदर्श उपस्थित किया है। इसी से तो तुम्हारा नाम आज तक अजर अमर है।

अनेक वीरों और उद्भट धनुर्धरों की आहुति लेने पर भी युद्ध शान्त नहीं हुआ। उसकी गति बढ़ती ही गई।

जिस तरह अग्नि की ज्वाला आकस्मिक वायु का सहारा पाकर प्रचण्ड लपटों के रूप में परिणत होती है, वही हाल इस युद्ध का भी हुआ। आकस्मिक घटनाओं से यह युद्ध भी बढ़ता ही गया। एक दिन दुर्योधन की पटरानी भानुमती, अपनी सहेलियों के साथ, देव-पूजा को जा रही थी, उसका रथ और उसके रथ का राजसी ठाठ दर्शनीय था। घोड़े हवा से बातें कर रहे थे, पर सूत की कुशलता से रथ के चलने का शब्द भी न सुन पड़ता था। भानुमती अपने पति की विजय के लिए देवदेव इष्टदेव को हृदय में स्मरण कर रही थी कि एकाएक उसकी एक सखी ने कहा कि देवि! देखो पाँच पाण्डवों की पत्नी द्रुपद नन्दिनी सामने रथ पर जाती हुई तुम्हें किसी ध्यान में लीन देखकर अपनी सहेलियों के साथ तुम्हारी हँसी कर रही है। तुम्हें वे उपहास की दृष्टि से देखती हैं; तुम तो किसी ध्यान में आँखें बन्द किये हो, पर वहाँ पर अपनी सहेलियों के साथ अठखेलिया करती हुई धृष्टद्युम्न की बहिन तुम्हारी नकल करने के लिए आँखें बन्द करती हैं।

भानुमती ने आँखें खोल दीं। उसका ध्यान भङ्ग हो गया। उसने कहा—

सखी! भेदभाव बढ़ानेवाली ऐसी बातें क्यों कर रही हो? द्रुपद-नन्दिनी मेरी बड़ी बहिन हैं। वे मेरा उपहास क्यों करेंगी। इतने दिनों तक जङ्गल में रहने के बाद उन्हें

यह सुख मिला है; इसी का वे उपभोग कर रही हैं। वे वीर कन्या हैं, अपने वीर पति अर्जुन की बाणावली का स्मरण करके आनन्द-निमग्न हो रही होंगी।

यह कहकर ही भानुमती ने देखा कि उसके रथ के बराबर ही दूसरा रथ उसी सज धज से जा रहा है। भानुमती ने द्रौपदी को देखकर मस्तक झुकाया, पर कृष्णा ( द्रौपदी ) सखियों के साथ हँसने और आमोद-प्रमोद करने में सचमुच ही व्यस्त थी; वह सचमुच ही भानुमती की नक़ल कर रही थी। इस बार भानुमती के नेत्रों ने भी वह छटा देख ली जिसके विषय में उसकी सखी ने उससे कहा था। भानुमती ने देखा कि पाञ्चाल-पुत्री की वेणी खुली हुई है—फिर भी उसके चेहरे पर ज्योति जगमगा रही है। वह सखियों के बीच में बैठी है; एकाएक उसने फिर आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी ही देर में उसकी सखी नक़ल करती हुई कहने लगी—"देवी भानुमती! शोच न करो, महाराज दुर्योधन यदि रण-क्षेत्र में हार भी जायँगे तो भी महाराज युधिष्ठिर के सामने हाथ जोड़ने पर ही अपने सब अपराधों से छुट्टी पा सकते हैं। महाराज युधिष्ठिर बड़े क्षमा-शील हैं।" इस पर दूसरी सखी ने कहा—"पर महाराज अर्जुन के बाण और महाराज भीमसेन की गदा जब इस तरह का अवसर आने दे तब न—अरी! माफ़ी माँगने की नौबत ही क्यों आवेगी?" यह सुनकर द्रौपदी खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसकी सखियाँ भी हँस

पड़ीं। उनके हास्य ने मानो यह कह दिया कि सबके दिन समान नहीं रहते।

भानुमती को अब कुछ समझना शेष न रहा, पर फिर भी उसने धैर्य न छोड़ा। अपना ही परिहास और अपनी ही नक़ल देख-सुनकर भी उसने दुबारा द्रौपदी के सामने मस्तक झुकाया।

द्रौपदी ने भी जवाब में मस्तक झुका दिया। यही द्रौपदी की ओर से मानो भानुमती के प्रणाम का आशीर्वाद था। फिर द्रौपदी ने कहा—

भानुमती! क्या अपनी सास गान्धारी देवी की तरह तुम भी आँखें बन्द कर पति-पद में लीन रहती हो। कहो, अच्छी तो रहती हो, कहाँ जा रही हो?

द्रौपदी की इन ताने-भरी बातों से भानुमती को बड़ा दुःख हुआ। उसे द्रौपदी की वह बात भी याद आ गई, जिसके द्वारा इन्द्रप्रस्थ के राजसूय यज्ञ में द्रौपदी ने दुर्योधन की हँसी की थी। भानुमती ने मन ही मन कहा—द्रौपदी! तुम्हारी इन्हीं ताने-भरी बातों ने तो मेरे पति को भी तुम्हारे पतियों का शत्रु बनाया। तो क्या तुम्हारे ताने ही इस महाभारत के प्रकृत कारण हैं?

इसके अनन्तर भानुमती ने द्रौपदी से खुल्लमखुल्ला कहा—

बहिन! मेरी कुशल का हाल तुम क्या पूछ रही हो, मैं तो अभी तक दुखी ही थी, तुम्हारे जङ्गल के दुःखों का हाल

सुनकर मैं आँसू ही बहाती रही। तुम्हारी खुली वेणी की बात याद करके मुझे जो दुःख होता था उसका कहना व्यर्थ है। पर अब, जब यह प्रत्यक्ष देख रही हूँ कि तुम आनन्द में पुलकित हो रही हो—तो तुम्हें पुलकित देखकर मैं भी अपना कुशलपूर्वक होना समझती हूँ।

भानुमती का यह जवाब सुनकर द्रौपदी अवाक् हो गई। उसके मुँह से बोल न निकला; पर उसने अपनी प्रधान सखी की ओर निहार दिया, मानो उससे वह कह रही हो कि तू इस बात का उत्तर क्यों नहीं देती।

अपनी मालकिन का रुख देखकर द्रौपदी की सखी ने कहा—

देवी! द्रुपद-नन्दिनी की वेणी मामूली नहीं। उसके लिए आप चिन्ता न करें। वह वेणी उसी समय बँधेगी जब एक सौ वेणियाँ खुल जायँगी (यानी दुर्योधन आदि १०० भाई मारे जायँगे)।

जब भानुमती की सखी ने देखा कि द्रौपदी की सखी इस प्रकार प्रगल्भता से बातें कर रही है, तब उसने भानुमती की आज्ञा की प्रतीक्षा न की। वह इन बातों को सहन न कर सकी। उसने कहा--

बहिन! पाञ्चाली की वेणी की बात तो तुम तभी जानतीं जो विराट्-नगर में भी साथ रहतीं। वहाँ पर जिसने सैकड़ों रानियों की वेणियाँ बाँधी हों वह वेणी खोले ही हुए शोभा पाती है। उसकी खुली वेणी तो इस बात की निशानी है

कि वह राज-महलों में वेणी छोरने और बाँधने के काम में लगी रहती है। सच है, एक सौ वेणियों को खोलकर बाँधे बिना द्रौपदी की वेणी बँध हो क्यों सकती है? (अर्थात् जब तक महाराज दुर्योधन के महलों में उनके सौ भाइयों की रानियों की वेणी बाँधनेवाली दासी बनकर द्रौपदी न रहेगी, तब तक उसका अभिमान ही दूर न होगा।)

यह कहकर भानुमती की सखी ने फिर कहा—

गान्धारी देवी से रानी भानुमती की बराबरी करना ठीक ही है। पर रानी द्रौपदी ने भी अपनी सास कुन्ती की बराबरी करने की ख़ूब कोशिश की; यदि जङ्गल में देवताओं को बुलाकर इनको भी पुत्र मिल जाते तब तो पूरी बराबरी थी। क्या कहें कुछ कसर रह गई।

इतने ही में देव-मन्दिर निकट आ गया। रानी भानुमती का रथ रुक गया। पर द्रौपदी का रथ उसी राजपथ पर आगे की ओर चला गया।

मन्दिर में पूजा करने के बाद लौटकर भानुमती अपनी सास के पास पहुँची। उसने द्रुपद-सुता के परिहास की बात यथाक्रम पतिव्रता गान्धारी को सुना दी। उसने द्रौपदी की इस हँसी पर शोक भी प्रकट किया। पर गान्धारी ने कहा—

बेटी! समय ही का फेर समझो। समय ही सबको अशक्त और सशक्त बनाता है। द्रौपदी का जो अपमान राज-सभा में हुआ है, उस अपमान से कुन्ती को जो दुःख पहुँचा

है वह अकथनीय है। द्रौपदी इस भाँति अब उसी का बदला लेने के लिए दिल के फफोले फोड़ रही है। मैंने यह भी सुना है कि युद्ध के पहले जब पाण्डवों से कौरवों की सन्धि कराने को श्रीकृष्ण यहाँ को चलने लगे थे तब द्रौपदी ने उनसे कहा था कि "सन्धि के समय मेरे इन बालों की बात न भूल जाना।" आज मैं तुमसे कहती हूँ कि द्रौपदी के वाक्यों के ही प्रभाव में पड़कर श्रीकृष्ण ने सन्धि की पूरी कोशिश नहीं की। यदि वे पूरी चेष्टा करते तो मैं विश्वास-पूर्वक कह सकती हूँ कि अवश्य ही सन्धि हो जाती और इस विकट समर के आयोजन में कौरव-पाण्डव दोनों का नाश न होता। अस्तु, पुत्रो! तुम किसी के परिहास पर शोक न करो। तुमने द्रौपदी के साथ शिष्टता का जैसा बर्ताव किया है, एक उच्च कुल की रमणी के लिए ऐसा ही उचित था। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। तुम्हारा ऐसा बर्ताव सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। दूसरों का परिहास करनेवालों का स्वयं ईश्वर ही परिहास करने लगता है। तुम उसी जगदीश्वर पर विश्वास रक्खो। बेटी! तुम अपने पति की कल्याणकामना करना, पर किसी की अकल्याणमयी चिन्ता में न लगना।

धन्य देवी गान्धारी! धन्य! भारत में तुम सरीखी उपदेश देनेवाली माताएँ कितनी हैं? सच है, तुम्हारे उपदेशों में अमृत था।

---

# सोलहवाँ परिच्छेद

युद्ध-क्षेत्र से बाहर एक निर्जन स्थान पर एक बरगद का वृक्ष अपनी शाखाओं को फैलाये हुए खड़ा है। देखने से यही प्रतीत होता है कि यह एक पुराना वृक्ष है, सैकड़ों पथिक इसकी छाया में विश्राम कर चुके होंगे और सैकड़ों पक्षी इसकी शाखाओं में अब भी निवास करते हैं। इसी की छाया में थोड़ी दूर पर दो रथ खड़े हुए हैं। वृक्ष के नीचे सैनिक-वेश में एक युवक, एक नेत्रहीन मनुष्य, आँखों पर पट्टी बाँधे हुए एक स्त्री और एक और मनुष्य, ये चारों कुछ कुछ दूर पर शिलाखण्डों पर बैठे हैं।

इनके अधिक परिचय देने की हमें आवश्यकता न पड़गी। हमारे पाठक समझ गये होंगे कि सैनिक-वेश में स्वयं महाराज दुर्योधन और उनके सामने उनकी माता गान्धारी, महाराज धृतराष्ट्र और महात्मा सञ्जय हैं।

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। सबके चेहरों पर विषाद की धीमी रेखा झलक रही थी। सोच के कारण मनुष्यों में एक प्रकार का जो गाम्भीर्य्य प्रायः देखा जाता है उसी का आभास इनके चेहरों पर भी था। महात्मा सञ्जय ने कहा—

महाराज दुर्योधन! हम सब आपके आश्रित हैं। अगणित कौरव-सेना आपकी आज्ञाकारिणी है। बड़े बड़े वीर और

धनुर्धर आपके इशारे से रण में अपने प्राणों की आहुति दे रहे हैं। आपके कितने ही भाई वीरधर्म का पालन करते हुए इस नश्वर संसार से चल बसे हैं। आपके माता और पिता अब प्रतिक्षण आप ही का ध्यान करते रहते हैं। अब बहुत हो चुका, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर आपस में सन्धि कर लें। ऐसा करने से आपके माता-पिता बहुत सुखी होंगे।

धृतराष्ट्र—पुत्र! तुम्हें देखकर ही अभी तक हमारे प्राणों में प्राण बने हैं। गान्धारी भी तुम्हें देखकर ही जीती हैं। अब भी हमारा कहना मान लो। चाहे मेरे आदेश से समझो, चाहे मेरा अनुरोध मानो; तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो। जब भीष्म, द्रोण और कर्ण के रहते युद्ध का अन्त नहीं हुआ तो अब अच्छे फल की आशा करना व्यर्थ है।

गान्धारी—पुत्र! अपने पिता का कहना मानो, नेत्रहीन होकर भी ये कहते हैं कि तुम्हें देखकर ही ये जीते हैं। जिनके नेत्र नहीं होते वे रूप नहीं देख सकते; पर वे शब्द सुन सकते हैं, उन्हें शब्द सुनकर उतना ही आनन्द होता है जितना किसी नेत्रवाले को रूप देखकर। नेत्रहीन मनुष्य शब्द सुनना ही रूप देखना मानते हैं। तुम्हारे पिता तुम्हारा बोल (शब्द) सुनकर, तुम्हारी पीठ पर हाथ फेरकर (स्पर्श) और कभी कभी तुम्हारा मस्तक सूँघकर सुखी होते हैं। यही इनका सच्चा सुख है। तुम इन्हें इस सुख से वञ्चित न करो। यही हाल मेरा भी है,

मैं भी तुम्हें देख नहीं सकती, पर शब्द, स्पर्श और गन्ध-द्वारा सब सुख-दुखों का अनुभव करती हूँ। मुझे भी दुःखिनी न करो। हाय! भीष्म, द्रोण और कर्ण का पतन सुनकर न जाने मेरे हृदय में किस प्रकार की एक आशङ्का सी हो रही है। पुत्र! हमारी रक्षा करो। तुमसे मेरा अन्तिम अनुरोध है कि तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो।

महाराज दुर्योधन इन सब बातों को अविचल रूप से सुनते रहे। अन्त में उन्होंने कहा—

माता! मेरे बहुत से भाई मारे गये, जिसे मैं भाई से भी अधिक समझता रहा और जिसने मुझे भी भाई से अधिक समझा वह वीर विख्यात-कीर्ति कर्ण भी अब नहीं रहा; अब मैं सन्धि ही कर लूँ तो किस सुख के लिए। माता! मुझे कायरता न सिखाओ। तुम्हारा उपदेश मैं गाँठ बाँधे हुए हूँ। मुझे वीरधर्म्म से विमुख न कराओ। अब सन्धि करने की अपेक्षा मुझे लड़कर मर जाने में ही सुख ज्ञात होता है। या तो मेरी यह गदा अपने भाइयों के निहत होने का प्रतिशोध ही ले लेगी या······। दुर्योधन का कथन पूरा न होने पाया था कि आवाज़ सुनाई दी—"कहा हैं दुष्ट दुर्योधन! किधर जाकर छिपा है? कायर! सामने क्यों नहीं आता?"

यह आवाज़ भीमसेन की थी। इसे सहन करना दुर्योधन के लिए असह्य था। दुर्योधन ने अपनी गदा की ओर सामने देखकर कहा—

माता! अब मुझे आज्ञा दो। पापी भीम के ये वाक्य मुझसे सहे नहीं जा सकते। मैं अभी जाकर उस दुष्ट को उसकी उद्दण्डता का मज़ा चखाऊँगा।

गान्धारी देवी ने देखा कि ईश्वरेच्छा बलीयसी है! सन्धि के लिए उनकी यह अन्तिम चेष्टा भी विफल होती है। तब वे बोलीं—

पुत्र! यहाँ पर आकर भीमसेन तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता। तुम निर्भय सन्धि के प्रस्ताव पर राज़ी हो जाओ।

पर दुर्योधन ने कहा—माता! मुझे तुम अब यही आशीर्वाद दो कि रणक्षेत्र में मेरा शरीर वज्र का सा हो जाय, उस पर गदा या किसी दूसरे शस्त्र की चोट का कुछ भी असर न हो। बस, मुझे रणक्षेत्र में जाने की आज्ञा दो।

गान्धारी ने देखा कि जब तक भीम की जान में जान है तब तक दुर्योधन भी सन्धि नहीं कर सकता। तब उन्हें पुत्र-स्नेह ने घर दबाया। वे दुर्योधन की रक्षा के लिए व्याकुल हो उठीं। वे सोच ही रही थीं कि महाराज धृतराष्ट्र ने कहा—सौबलेयि! दुर्योधन की रक्षा करो।

यह सुनकर गान्धारी देवी ने कहा—इतने दिनों से मैंने आँखों का पट नहीं खोला। पर वत्स! दुर्योधन! आज तुम्हारी रक्षा के लिए पट खोलती हूँ। तुम नङ्गे होकर मेरे सामने आओ। मेरे देखने-मात्र ही से तुम्हारा शरीर वज्र सा हो जायगा। उस पर किसी अस्त्र-शस्त्र का असर न होगा।

यह कहकर उन्होंने देखा कि कुछ दूर पर दो मनुष्य आ रहे हैं। तब उन्होंने सञ्जय से कहा कि तुम जाकर देखो वे कौन हैं।

ज्यों ही सञ्जय उन्हें देखने गये, दुर्योधन ने अपने सैनिक वस्त्र उतार डाले, पर बिलकुल नग्न होकर माता के सामने जाने में उन्हें लज्जा आई, इससे गुह्य भाग को उन्होंने हाथों से ढक लिया। फिर उन्होंने माता के पास जाकर निवेदन किया कि मैं हाज़िर हूँ।

गान्धारी देवी ने आँखों की पट्टी खोलकर कहा—वत्स! माता के सामने पुत्र को नग्न आने में भी कोई लज्जा की बात न थी; पर भवितव्यता में किसका वश! तुम्हारा सब शरीर तो वज्र का सा हो गया, पर जितना भाग तुमने लज्जा-वश हाथों से ढक लिया है और जिस पर मेरी दृष्टि नहीं पड़ सकी वह कच्चा रह गया।

यह कहकर उन्होंने आँखों पर फिर पट्टी बाँध ली। इसी समय उनको मालूम हुआ कि सामने से श्रीकृष्ण और भीमसेन प्रणाम कर रहे हैं।

इस समय श्रीकृष्ण का वहाँ पर आ जाना सबको खटका। गान्धारी ने समझ लिया कि श्रीकृष्ण दुर्योधन की रक्षा के इस रहस्य को जान गये, यह अच्छा न हुआ।

पर गान्धारी ने श्रीकृष्ण से कहा—वत्स कृष्ण! मेरा अब भी विश्वास है कि यदि तुम सन्धि की चेष्टा करो और

हृदय से करो तो अब भी सन्धि हो जाय। तुम्हें सन्धि की चेष्टा करके दुर्योधन आदि की रक्षा करनी चाहिए।

श्रीकृष्ण बड़े चतुर थे। उन्होंने कहा—देवि! जब मैं हस्तिनापुर गया था और दुर्योधन ने मेरा कहना न माना था, उसी समय सन्धि की चेष्टा करने का विचार मैंने त्याग दिया था। दुर्योधन को समझाने और उसकी रक्षा करने का भार मैंने तुम्हीं पर छोड़ा था। अब दुर्योधन को समझाना अथवा उसकी रक्षा करना मेरी शक्ति के बाहर है।

इन बातों ने और भी स्पष्ट कर दिया कि कृष्ण उस रहस्य को जान गये हैं।

गान्धारी और कुछ कहना ही चाहती थीं कि भीमसेन ने दुर्योधन को ललकारकर कहा—

क्या कायर की भाँति बैठा हुआ है? चलकर युद्धक्षेत्र मे वीर की भाँति अपना धर्म क्यों नहीं पालन करता?

दुर्योधन के लिए यह बात असह्य थी। वह गरज उठा। उसने कहा—नराधम! वृथा क्यों प्रलाप करता है। समझ ले कि मेरी यह गदा तुझे यमलोक को पहुँचावेगी।

यह कहकर दुर्योधन और भीम दोनों गर्जन-तर्जन करते हुए रणक्षेत्र की ओर चले गये। श्रीकृष्ण ने भी गान्धारी देवी को प्रणाम किया और वे भी चल दिये।

---

# सत्रहवाँ परिच्छेद

युद्ध की गति बढ़ती ही गई। शल्य आदि शेष योद्धा भी मारे गये। अन्त में भीमसेन ने दुर्योधन के बड़े पराक्रमी दु:शासन आदि भाइयों को भी मार डाला।

सौ भाइयों में केवल दुर्योधन रह गया। उसका गदा-युद्ध उन दिनों जगत्प्रसिद्ध था। स्वयं श्रीकृष्ण इस बात को स्वीकार करते थे कि धर्मपूर्वक गदा-युद्ध करके भीम दुर्योधन से न जीत सकेंगे। इसी अवसर पर एक दिन तीर्थ यात्रा करते हुए कृष्ण के बड़े भाई बलराम आ गये। उन्होंने देखा कि युद्ध अब तक जारी है। यही नहीं, उनके सामने ही दुर्योधन और भीमसेन का गदा युद्ध होने लगा। दुर्योधन और भीमसेन दोनों ही बलरामजी को अपना गुरु मानते थे, इससे हारजीत का निर्णय करने के लिए दोनों ने बलरामजी को अपनी अपनी ओर से मध्यस्थ किया।

बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। दुर्योधन का गदा-युद्ध में अभ्यास बढ़ा चढ़ा था, उसने भीमसेन के छक्के छुड़ा दिये। भीमसेन का कवच टुकड़े टुकड़े हो गया, उनके शरीर से रुधिर बहने लगा। सब लोग दुर्योधन की युद्ध-कुशलता की प्रशंसा करने लगे। दुर्योधन के गदा घुमाने के करतब को देखकर पाण्डव लोगों का धीरज जाता रहा। स्वयं श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—

मित्र ! दुर्योधन बहुत बड़ा योद्धा है। न्यायपूर्वक युद्ध करके भीमसेन इससे न जीतेंगे। इससे भीमसेन को उसकी जाँघ पर प्रहार करना चाहिए।

यह सुनकर अर्जुन ने अपने बायें घुटने पर थपेड़ा मारकर भीमसेन को इशारा किया। वे इस इशारे को समझ गये। उन्हें अपनी प्रतिज्ञा भी याद हो आई। उन्होंने गदा युद्ध के नियमों के विरुद्ध दुर्योधन की जाँघ पर गदा मारी। गदा बड़े ज़ोर से लगी। इससे दुर्योधन की जांघ की हड्डी टूट गई और वे व्याकुल हो गये।

तब क्रोध में पागल होकर भीमसेन दुर्योधन के मस्तक पर बार बार लातें मारने लगे।

भीमसेन का यह व्यवहार देखकर सब लोग उनकी निन्दा करने लगे। स्वयं युधिष्ठिर ने उन्हें तिरस्कृत किया। गदा-युद्ध में प्रवीण महात्मा बलराम तो भीमसेन के इस व्यवहार से बहुत ही असन्तुष्ट हुए; वे चिल्लाकर कहने लगे—

शास्त्र के अनुसार नाभि से नीचे गदा मारना मना है। गदा-युद्ध के प्रवीण लोग इस नियम को भली भांति मानते हैं। पर महामूर्ख और कपटी—पापी—अन्यायी भीम ने मुझे मध्यस्थ बनाकर और मेरे रहते नियम भङ्ग करके दुर्योधन की जाँघ पर गदा मारी है। मैं इस पापी को, उसके पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए, अभी दण्ड देता हूँ।

यह कहकर वे अपना शस्त्र उठाकर भीम पर प्रहार करने के लिए झपटे। पर कृष्ण ने दोनों हाथों से उन्हें रोक लिया

और बहुत समझाया, फिर भी बलरामजी का क्रोध शान्त न हुआ। वे बोले—

कृष्ण! तुम चाहे जितनी रँगी बातें करो, पर मैं भली भाँति जानता हूँ कि भीमसेन ने अधर्म किया है। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हीं इस अधर्म्म के मूल कारण हो। सारा संसार तुम्हें और भीम को, दोनों को अधर्म्मी कहेगा। कुछ भी हो, अन्तिम समय तक दुर्योधन ने वीर-धर्म्म का पालन किया है इससे उसे स्वर्ग ही मिलेगा। पर पापियों और भीम सरीखे अधर्म्मी दुष्टों के लिए नरक का द्वार ही खुला है। मैं अब इस पापी भीम का मुँह भी देखना नहीं चाहता। तुम मेरे भाई हो इससे, तुम्हारे कहने से, इसे प्राण-दान देता हूँ। नहीं तो मेरा यह शस्त्र...कहते कहते बलरामजी के नेत्र लाल हो आये और रिस के मारे वे रथ पर सवार होकर द्वारका को चले गये।

तब कृष्ण ने कहा—अब इस पापी को यहीं छोड़कर हमें चलना चाहिए। यह दुर्योधन महा नीच है। हमने तो इसे उसी समय मरा समझ लिया था जब सन्धि का प्रस्ताव ले जाने पर इसने हमारी बात न मानी थी।

कृष्ण की ये बातें दुर्योधन से सहा न हुईं। वे किसी तरह उठ बैठे और उन्होंने कहा—

रे कंस के दास-पुत्र! कृष्ण! अधर्म्मी! तू क्या धर्म्म बघारता है? तुझे लाज नहीं आती! शिखण्डी को तूने ही आगे करके अधर्म्म-पूर्वक भीष्म-पितामह का संहार कराया।

क्या वह अधम न था ? अश्वत्थामा के मारने की झूठी ख़बर फैलाकर तूने ही शस्त्र-हीन गुरु द्रोण का वध कराया। क्या वह अधर्म न था ? सात्यकि और भूरिश्रवा के युद्ध में तेरे ही इशारे से अर्जुन ने अधर्म्म-पूर्वक भूरिश्रवा का शिर काटा। क्या वह अधर्म्म न था ? और तेरी ही दुष्ट बुद्धि के कारण रथ से उतरे हुए महावीर कर्ण को अधर्म्म से अर्जुन ने बाण मारे। क्या वह अधर्म्म न था ? आज भी तेरी ही अभिसन्धि से पापी भीम ने मुझ पर अधर्म्म से गदा चलाई, क्या इसे भी तू धर्म कह सकता है ? क्या तेरे बराबर भी कोई पापी और नीच निर्लज्ज है ?

उत्तर में श्रीकृष्ण ने और कुछ न कहकर यही कहा—दुर्योधन ! तुम बालकपन में ही कुकर्म्मी थे। तुम्हारी ही अनीति के कारण तुम्हारी यह दशा हुई है। अब व्यर्थ क्यों प्रलाप करते हो ?

यह कहते हुए पाण्डवों को साथ लेकर श्रीकृष्ण चल दिये।

उसी दिन, रात को, अश्वत्थामा ने पाण्डवों के डेरे में जाकर शेष वीरों को मार डाला और आकर यह संवाद दुर्योधन को सुनाया। तब अश्वत्थामा को गले लगाकर दुर्योधन ने प्राण छोड़े।

जिस समय दुर्योधन ने प्राण-त्याग किये उस समय उन्होंने यह संवाद सुन लिया कि कौरवों की ओर कृपाचार्य, कृतवर्म्मा, अश्वत्थामा और पाण्डवों की ओर केवल पाँचों पाण्डव और श्रीकृष्ण जीते बचे हैं। बाक़ी वीर इसी समराग्नि में स्वाहा हो गये।

---

# अठारहवाँ परिच्छेद

युद्ध समाप्त हुआ। अपने पुत्रों समेत दुर्योधन के मारे जाने का संवाद महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारी के कानों तक पहुँचा। उन्होंने यह भी सुना कि भीम ने बलरामजी के सामने अधर्म्मपूर्वक युद्ध में दुर्योधन की जाँघ पर गदा मारी। यह सुनकर एवं पाण्डवों का, और विशेष कर श्रीकृष्णजी का, अधर्म में शामिल होना जानकर गान्धारी को बड़ा दुःख हुआ। उन्हें पाण्डवों पर और श्रीकृष्ण पर बड़ा क्रोध आया।

विदुर की अनुमति से महाराज धृतराष्ट्र, पतिव्रता गान्धारी और अन्य कौरव-नारियों ने रणक्षेत्र में जाने की तैयारी की। वे सब रथों पर सवार होकर रणक्षेत्र को चल पड़ीं। यह दृश्य देखकर सब नगर-निवासी रोने लगे।

एक कोस भर मार्ग तय हुआ होगा कि उन्हें रास्ते ही में कृपाचार्य, कृतवर्म्मा और अश्वत्थामा मिले। उन्होंने युद्ध-क्षेत्र का सब हाल कह सुनाया—कि हम तीनों आदमियों को छोड़कर सारी कौरव-सेना नष्ट हो गई।

आचार्य्य कृप ने पुत्र-शोकाकुला गान्धारी से कहा—देवि! तुम्हारे पुत्र वीर-धर्म्म का पालन करते हुए रणक्षेत्र में बड़ी वीरता से लड़े हैं। इससे वे अवश्य ही स्वर्गलोक में आनन्द कर रहे होंगे। क्षत्राणी माता को वीर पुत्रों की मृत्यु

पर आँसू न बहाने चाहिएँ। तुम्हारा जेठा पुत्र दुर्योधन भी बड़ी वीरता करके मरा है। जब उसके साथ भीमसेन का गदा-युद्ध हो रहा था, तब उसके युद्ध-कौशल की शत्रुओं ने भी प्रशंसा की। गदा युद्ध में उसकी कुशलता स्वयं श्रीकृष्ण ने स्वीकार की है। बलरामजी तो बार बार उसके करतबों की प्रशंसा करते रहे हैं। जब दुष्ट भीम ने अधर्म्म से उस पर वार किया तब सभी ने भीम की निन्दा और दुर्योधन की प्रशंसा की है; इससे देवि! उसके लिए तुम्हें शोक न करना चाहिए। अब मैं जाता हूँ।

यह कहकर कृपाचार्य्य चले गये। गान्धारी देवी ने मारे शोक के उनसे कुछ नहीं कहा।

रणक्षेत्र में उनका आगमन सुनकर पाण्डव लोग पहले ही से मौजूद थे। पाण्डवों और श्रीकृष्ण को सामने आया हुआ जानकर गान्धारी युधिष्ठिर को शाप देने के लिए तैयार हुईं; पर व्यासदेव ने अपने योग-बल से यह बात जान ली। इसलिए वे एकाएक आकर वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने कहा—

बेटी! युद्ध के पहले तुम्हीं ने कहा था कि जहाँ धर्म्म है वहीं जय है; फिर पाण्डवों की जीत पर तुम्हें क्यों शङ्का होती है? पुत्री! तुम सदा ही दूसरों की भलाई करती आई हो फिर आज पाण्डवों की अनिष्ट-कामना क्यों कर रही हो? हम तुम्हें वर देते हैं कि तुम आँखें बन्द किये रहने का

व्रत करके भी अपने आत्मीयों के कुरुक्षेत्र में पड़े हुए शरीर देख सकोगी।

तब गान्धारी ने कहा—मैं पाण्डवों की बुराई नहीं चाहती, पर क्या करूँ, पुत्र-शोक से मैं बहुत ही व्याकुल हूँ।

श्रीकृष्ण ने युद्ध में हथियार नहीं उठाये. उन्होंने केवल अर्जुन का रथ हाँका था। पर गान्धारी यह भली भांति जानती थीं कि उन्हीं के कौशल से कौरवों की तरफ़ के सब वीर मारे गये हैं और पाण्डव लोग विजयी हुए हैं। इससे पाण्डवों की अपेक्षा वे श्रीकृष्ण पर ही अधिक कुपित थीं।

रणक्षेत्र का दृश्य बड़ा भयङ्कर था। वहाँ चारों ओर अनगिनती मरे हुए और घायल लोगों के शरीर पड़े थे। किसी का कोई अङ्ग विदीर्ण हो गया था, किसी के हाथ-पैर कट गये थे और किसी का मस्तक चूर्ण हो गया था। कोई कोई तकलीफ के मारे कराह रहा था और कोई कोई प्यास के कारण "पानी, पानी" कहकर चिल्ला रहा था। कोई कोई अपने बाप, मा, भाई, बहन की बातें याद करके आंसू बहा रहा था। केवल सैनिकों की लाशें ही वहां न थीं, बल्कि मरे हुए हाथियों और घोड़ों की देहों के भी पहाड़ से बन गये थे। कहीं कहीं लोहू की कीचड़ हो गई थी; उसमें कीड़े और मक्खियाँ भिन भिन करती थीं, चारों ओर से ऐसी दुर्गन्धि उठ रही थी कि किसी की ताब न थी कि वहां प्रवेश कर सके। जिन जन्तुओं को रक्त और मांस प्रिय होता है वे

वहाँ पर एकत्रित होकर आनन्दपूर्वक लाशों का भोजन कर रहे थे। सैनिक लोगों के व्यवहार में आनेवाले अस्त्र शस्त्र चारों ओर फैले हुए थे; कहीं बाण, कहीं गदा और कहीं तलवारों के ढेर पड़े थे। टूटे हुए रथों और उनके साज-बाज के कारण रणभूमि में प्रवेश करना कठिन हो रहा था। गान्धारी देवी ने एक बार चारों ओर निगाह दौड़ाई; एक दासी उन्हें मरे हुए पुरुषों और उनकी अनुगामिनी कौरव-पाण्डव-रमणियों का परिचय भी देती जा रही थी। रणक्षेत्र का यह भीषण दृश्य देखकर गान्धारी देवी का हृदय फट सा गया। उन्होंने श्रीकृष्ण को सम्बोधन करके कहा—

कृष्ण! देखो हमारी बहुएँ अनाथाओं की तरह बाल बिखराये और रोती हुई अपने अपने पति, पिता, पुत्र और भाइयों की याद करके उनकी लाशों की ओर दौड़ रही हैं। समराङ्गण पुत्र-हीना वीर-माताओं और पति-हीना वीर-रमणियों से भर उठा है। यह देखो! गृध्र और गीदड़ वीर पुरुषों की लोहू सनी लाश नोच नोचकर खा रहे हैं। जिन लोगों के सामने बन्दीगण विरद-पाठ करते थे उन्हीं को आज सियारियों की ध्वनि सुननी पड़ रही है। यह देखो! हमारी वधुओं का कोमल कमल-मुख सूख गया है। वे नेत्रों से अश्रुधारा बरसाती हुई इधर उधर घूम रही हैं। मेरी बहुत सी बहुएँ तो लम्बी साँसें लेने और शोक दुःख में अधिक रोने के कारण मूर्छित हो गई हैं। देखो! कोई तो अपने पति की

लाश अपनी छाती में लगाये हुए हैं और कोई अपने पति का पैर अपने आँसुओं से धो रही है। कोई अपने पति का छिन्न शरीर पाकर मस्तक ढूँढ़ रही हैं और कोई कटा हुआ मस्तक पाकर बचे हुए धड़ की खोज कर रही हैं। मैं जिस ओर नज़र डालती हूँ, हा! उसी ओर अपने पुत्रों, पोतों, भाइयों और भतीजों की लाशें देखती हूँ। शायद मैंने पूर्वजन्म में किसी घोर पाप का अनुष्ठान किया था, नहीं तो आज मुझे यह दृश्य क्यों देखना पड़ता?

इस प्रकार रुदन करती हुई गान्धारी देवी वहाँ पहुँचीं जहाँ पर दुर्योधन की लाश पड़ी थी। उसी लोहू-सनी लाश को अपनी भुजाओं से लपटाकर "हा पुत्र! हा दुर्योधन! कहकर वे फफक कर मारकर रोने लगीं। हार पहने हुए दुर्योधन की चौड़ी छाती आँसुओं से भीग उठी।

इसके बाद उन्होंने कृष्ण से कहा—केशव! देखो तो यह उसी दुर्योधन का शरीर है, जिसके आश्रय में सैकड़ों धनुर्धर सुख से सोते थे और जिसके डर से घबराकर पाण्डव लोग तेरह वर्ष तक नींद भर नहीं सोये। जिस समय जाति का संहार-कारी यह युद्ध आरम्भ नहीं हुआ था उस समय दुर्योधन ने संग्राम जीतने की इच्छा से मुझसे आशीर्वाद माँगा था, तब मैंने कहा था—'पुत्र! जहाँ धर्म है वहीं जय है, जब तुम युद्ध से मुँह नहीं मोड़ते हो तो निश्चय ही तुम्हें स्वर्ग मिलेगा।" उस समय पुत्र को मरा हुआ जानकर भी मैंने

कुछ शोक नहीं किया; पर अब बन्धु-बान्धव-विहीन बूढ़े महाराज की चिन्ता करके मुझे बड़ा शोक हो रहा है।

यह देखो! दुर्योधन की पटरानी भानुमती, मेरी जेठी पुत्रवधू, महाराज भगदत्त की कन्या और युवराज लक्ष्मण की माता अपना माथा पीटती हुई कभी अपने पुत्र का मस्तक सूँघती है और कभी अपने पति के शरीर को अपने आंसुओं से धोने लगती है। हाय! यह दृश्य देखकर भी जब मेरे प्राण नहीं निकलते तो मान लेना पड़ेगा कि मृत्यु के पहले कोई नहीं मरता। वासुदेव! यह सत्य है कि मेरे पुत्र अधर्म्माचारी थे, परन्तु पहले उन्होंने चाहे जो कुछ किया हो, पर रणक्षेत्र में उन्होंने क्षत्रियोचित वीरधर्म्म का ही पालन किया है। वे पाण्डवों के सामने लड़ने से नहीं डरे। यदि शास्त्र सत्य है तो उन्हें स्वर्गलोक में अवश्य ही स्थान मिला होगा।

माधव! अपनी बहुओं की दशा देखकर ही मुझे मर्म्मान्तिक क्लेश हो रहा है। मेरे पुत्र विकर्ण की तरुणी स्त्री को ओर देखो; गृध्रों और शृगालों के आक्रमण से अपने स्वामी के शरीर की रक्षा करने के लिए, वह बार बार प्रयास कर रही है; पर हाय! उसका कुछ वश नहीं चलता। देखो! मेरी प्राणों से भी अधिक प्यारी कन्या दुःशला अपने स्वामी जयद्रथ का शरीर पाकर उसका शिर ढूँढ़ने के लिए पगली की तरह इधर उधर दौड़ रही है। माता होकर, और यह दृश्य देखकर, मेरे मन में जो कुछ होता है वह तुमसे किस तरह कहूँ

और तुम्हें किस तरह बताऊँ? यह देखो! तुम्हारा भानजा अभिमन्यु यह पड़ा है। मर जाने पर भी उसके मुँह की सुन्दरता कम नहीं हुई, वह निस्तेज नहीं हुआ। हतभागिनी उत्तरा उसका कवच खोलकर हथियारों से घायल उसकी देह पर एक दृष्टि डाल रही है। इधर देखो, आचार्यपत्नी कृपी दीन-भाव से नीचा मुँह किये बैठी हैं। सामवेद का उच्चारण करनेवाले लोग विधिपूर्वक आचार्य्य की चिता तैयार कर रहे हैं।

पुत्र, पौत्र, भाई, भतीजों और अन्य आत्मीयों को मरा देखकर मुझसे धीरज नहीं धरा जाता। हाय! विधाता! क्या यही दृश्य दिखाने के लिए तुमने मुझे जीवित रक्खा था?

गान्धारी देवी व्यासदेव के वर से पाई हुई दिव्यदृष्टि-द्वारा रणक्षेत्र का यह दृश्य देखकर विलाप करते करते मूर्च्छित हो गईं। थोड़ी देर तक तो उन्हें होश ही नहीं रहा। पर जब होश हुआ तो कृष्ण की ओर उन्होंने क्रोध-भरी निगाह डाली और कहा—

कृष्ण! हमने साधुओं के मुँह से सुना है कि तुम नारायण हो। परन्तु जब तुम मनुष्य-देह धारण करके साधारण मनुष्यों की तरह पाप-पुण्य का अनुष्ठान करते हो, तब तुम्हें भी मनुष्यों की भाँति सुख और दुःख भोग करना पड़ेगा। तुममें जितना शास्त्र-ज्ञान है, जितनी बातें तुम्हें बनानी आती हैं, तुम्हारे पास जितनी सेना और बुद्धि है, उसे जानकर मुझे विश्वास है कि यदि तुम एक बार और भी निश्छल होकर

सन्धि के लिए चेष्टा करते तो अवश्य सन्धि हो जाती और युद्ध रुक जाता। परन्तु तुमने इसकी उपेक्षा कर दी और चेष्टा न की। यदि तुमने चेष्टा न की थी तो तुम्हें उचित था कि तुम किसी का पक्ष न लेते। तुमने युद्ध में हथियार नहीं उठाये यह सत्य है, परन्तु तुम्हारी सलाहों ने हथियारों की अपेक्षा हज़ारगुना भयङ्कर काम किया है। हमारे पुत्रों को जब तुमने अधर्म्माचारी होने के कारण त्याग दिया था, तो जिस दिन पाण्डवों ने अधर्म्म-युद्ध में परम धार्मिक भीष्म को गिराया था, उस दिन तुमने उन्हें क्यों नहीं रोका? तुमने जब जान बूझकर अधर्म्मियों का सहारा दिया है तो उसका फल तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। तुम्हारे भी पुत्र, पौत्र और बान्धव-गण इसी तरह बन्धु-विरोध की आग में जल मरेंगे और जिस भाति आज कौरव-रमणियाँ विलाप कर रही हैं उसी तरह तुम्हारी कुल-नारियाँ भी अपने पतियों, पुत्रों और बन्धुओं के शोक में शिर धुनकर रोयेंगी और कलपेंगी।

गान्धारी को दुखी देख श्रीकृष्ण ने कहा—

देवि! आपने हमें बिना कारण ही शाप दिया। हमारा कोई दोष नहीं। खैर, और शोक न कीजिए। ब्राह्मणी तपस्या और शूद्रा सेवावृत्ति के लिए पुत्र उत्पन्न करती हैं। पर क्षत्राणियों की अभिलाषा यही रहती है कि हमारे पुत्र युद्ध में मरें।

---

# उन्नीसवाँ परिच्छेद

रण-क्षेत्र से सब लोग लौट आये। युद्धिष्ठिर ने सब मरे हुए वीरों का क्रिया-कर्म्म किया। यह सब करके वे अपने भाइयों और अपनी माता कुन्ती के साथ लौट आये। द्रौपदी आदि रानियों और अपनी वधुओं इत्यादि के साथ पतिव्रता गान्धारी भी लौट आईं। महात्मा सञ्जय, विदुर और महाराज धृतराष्ट्र भी वापस आये।

अब पाण्डवों का निष्कण्टक राज्य हुआ। युधिष्ठिर राज्य-सिंहासन पर बैठे; पर उन्होंने सेवा और भक्ति से, महाराज धृतराष्ट्र और पतिव्रता गान्धारी को सन्तुष्ट कर लिया। गान्धारी के साथ उन्होंने बड़ा अच्छा व्यवहार किया। पाण्डव लोग उनकी बड़ी सेवा करते थे इसी से उन्हें किसी वस्तु का न अभाव रहा और न किसी भाँति का क्लेश ही हुआ। यह सब होने पर भी गान्धारी को शान्ति न मिली। शान्ति उनके लिए दुर्लभ सामग्री हो गई।

अन्त को महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारी ने वन जाकर तपस्या करने की इच्छा प्रकट की। हस्तिनापुरी उन्हें श्मशान की भाँति दीख पड़ती, पतिपुत्रहीना रमणियों की हाय हाय सुनकर गान्धारी को सदा ही शोक और अशान्ति रहती। पद पद पर पुत्रों की मृत्यु की याद करके उनके आँसू बहा करते। उन्होंने अपना विचार जताने के लिए विदुर से कहा—

वत्स ! अब हमें यहाँ शान्ति-सुख नसीब नहीं होती। युधिष्ठिर हमें माता-पिता के समान ही मानकर हमारी सेवा करते हैं, हमारी सेवा में उनसे कोई त्रुटि नहीं होती; पर पुत्रशोक से हम दोनों इतने व्याकुल और दुःखित रहते हैं कि हमारा चित्त तनिक भी शान्त नहीं रहता। इससे हमारी इच्छा है कि हम वन में जायँ और वहाँ पर तपस्साधन करके कुछ शान्ति प्राप्त करें। इसके लिए तुम युधिष्ठिर से कहकर उनकी अनुमति माँग दो।

दूसरे दिन विदुर ने युधिष्ठिर से जाकर सब हाल कहा। युधिष्ठिर पहले तो इस पर राज़ी न हुए। पर जब विदुर ने बहुत कुछ समझाया और धृतराष्ट्र तथा गान्धारी की वन को जाने की विशेष अभिरुचि देखी तो वे राज़ी हो गये।

इसके अनन्तर धृतराष्ट्र, विदुर, सञ्जय और पतिव्रता गान्धारी ने वन को प्रस्थान किया। कुन्तीदेवी भी उन्हीं के साथ चलीं।

इन सबका पयान देखकर कौरव-वंश की स्त्रियों ने बहुत विलाप किया। उस विलाप से अन्तःपुर गूँज उठा। द्रौपदी, सुभद्रा और उत्तरा आदि रानियाँ भी रोने लगीं। सब लोग उन्हें पहुँचाने गये।

द्रौपदी बहुत रोई। कुन्ती और गान्धारी के चरण पकड़कर उसने बड़ा विलाप किया। तब गान्धारी ने कहा—

वत्से ! तुम्हारे पतियों की और तुम्हारी सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। ईश्वर तुम्हारा और तुम्हारे पतियों का कल्याण करे।

फिर गान्धारी ने कुन्ती से कहा—बहिन ! अब तुम भी

लौट जाओ। तुम पाण्डवों की माता हो, इतने ऐश्वर्य्य और पुत्रों को छोड़कर तुम दुर्गम वन का कष्ट क्यों उठाओगी ? अपने राज्य में रहकर भी तुम दान-व्रत इत्यादि के द्वारा अच्छी तपस्या कर सकती हो।

पर कुन्ती ने न माना। उसने गान्धारी के साथ वन को जाने की पक्की ठान ली।

तब महाराज युधिष्ठिर आदि पाण्डव और रानियाँ लौट आईं।

सञ्जय और विदुर के साथ महाराज धृतराष्ट्र, पतिव्रता गान्धारी और कुन्ती वन की ओर चली गईं। वहाँ पर नदी के किनारे एक रमणीय आश्रम में उन्होंने निवास किया। वहाँ वे यज्ञ-अनुष्ठान करने, वेदपाठ सुनने और शास्त्रालोचन करने में अपना समय बिताने लगे। उनका यह समय शान्ति से बीतने लगा। धर्मराज युधिष्ठिर उनकी ख़बर लेते रहते और कभी कभी आश्रम में जाकर उन्हें देख आते थे।

एक बार महाराज युधिष्ठिर उन्हें देखने गये। उन्होंने देखा कि महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारी का आश्रम केलों से घिरा और हिरणों से परिपूर्ण है। वहाँ शान्ति की डौंड़ी पिट रही है। सर्वत्र सुख ही सुख दृष्टि आता है। व्रतधारी तपस्वी अपने अपने व्रत-पालन में लगे हुए उस भूमि को पवित्र कर रहे हैं। उन तपस्वियों से महाराज युधिष्ठिर ने पूछा—

हे तपस्वियो ! इस समय हमारे पूज्य चाचा कुरुराज धृत-राष्ट्र कहाँ हैं ?

तपस्वियों ने कहा—महाराज! इस समय वे नदी में स्नान करने, फूल तोड़ने और जल लाने के लिए गये हैं। आप यदि इसी मार्ग से जायँ तो शायद वे लौटते हुए मिल जायँ।

तपस्वियों के कहने के अनुसार महाराज युधिष्ठिर उसी मार्ग होकर गये। थोड़ी ही दूर पर चलकर उन्होंने देखा कि महात्मा सञ्जय, विदुर, कुरुराज धृतराष्ट्र, पतिव्रता गान्धारी और कुन्ती सब लोग आ रहे हैं।

युधिष्ठिर ने सबको प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। इसके पश्चात् वे लौट आये।

एक दिन गान्धारी इत्यादि के साथ महाराज धृतराष्ट्र गङ्गाद्वार गये, वहाँ से लौटकर उन्होंने एक यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होने पर याजकों ने यज्ञ की अग्नि निर्जन वन में छोड़ दी और अपने अपने आश्रमों को चले गये। दैव-संयोग से वह आग बढ़ चली और सूखी लकड़ियों के संयोग से जङ्गल में चारों ओर फैल गई। धृतराष्ट्र और गान्धारी कुटी में बैठे थे। कुन्ती, सञ्जय और विदुर भी वहाँ थे। अकस्मात् अग्नि का प्रचण्ड गर्जन और आश्रम-निवासियों का आर्त-नाद सुनकर, महाराज धृतराष्ट्र बहुत शङ्कित हुए। उन्होंने कुन्ती, सञ्जय और विदुर को भागने के लिए कहकर गान्धारी से कहा—

प्रिये! तुम आँखों का पट खोल डालो तो तुम मार्ग देख सकती हो और भागकर अपनी रक्षा कर सकती हो। हमें साथ लेने से तुम्हारे जाने में विघ्न पड़ेगा। तुम भागो; हमारे लिए चिन्ता न करना।

अब आग की लपटें अधिक तेज़ हो रही थीं। गान्धारी ने कहा—

नाथ! इतने दिनों के बाद आज यह कैसा आदेश दे रहे हो? किस सुख की आशा में आपको छोड़कर मैं अपनी रक्षा करूँ? अपनी रक्षा करके मैं क्या करूँगी? पति ही स्त्रियों का धर्म्म, पति ही कर्म्म और पति ही उनके लिए परमेश्वर है। स्त्रियों को केवल पति ही का व्रती होना चाहिए। उन्हें जप, तप, योग करने की कोई आवश्यकता नहीं; वे केवल पति के चरण-कमलों की सेवा करके सब पापों से छूट सकती हैं। वे पति की अर्द्धाङ्गिनी इसी लिए कही जाती हैं कि वे पति के सुख-दुःख में उसी भाँति शरीक रहें जैसे अपना आधा अङ्ग। फिर मैं आँखों का वस्त्र किसलिए खोलूँ? आओ एक दिन अग्नि ही को साक्षी देकर दोनों मिले थे, और आज उसी अग्नि में जीवनत्याग करके दोनों ही शान्ति प्राप्त करें।

गान्धारी देवी यह कहकर अपने पति से लिपट गईं और अग्नि की लपटों ने उनके पति के साथ उन्हें भी अपने में मिला लिया।

पर क्या अग्निदेव ऐसी सच्ची अर्द्धाङ्गिनी और आदर्श पतिव्रता का यश और नाम भी मेट सके? इसके उत्तर में यही ध्वनि निकलती है कि नहीं। सच्ची अर्द्धाङ्गिनी और आदर्श पतिव्रता देवी गान्धारी का नाम और यश आज तक भी अजर अमर है।

---